प्रकाशन की तिथी 26, अगस्त 2016 वर्ष-31 अंक 9 सितम्बर, 2016 मूल्य ₹10

प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित स्वास्थ्य की मासिक पत्रिका

Organ of Akhil Bhartiya Prakritik Chikitsa Parishad

परिषद् प्रभा

PARISHAD PRABHA

कुल पृष्ठ संख्या 28 कवर सहित

वक्रतुंड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।।

सभी पाठकों को राधा अष्टमी की शुभकामनाएं

सम्पादकीय

प्रतिस्पर्धी भोगी वैश्विक व्यवसायिक युग में विश्वसनीय लाभकारी उपभोग की कल्पना आज के युग में संभव होना समझ से परे है।

बौद्धिक कौशल के लिए ज्ञान, ज्ञान के लिए शिक्षा एवं आरोग्य के लिए आवश्यकतानुरूप तत्काल लाभकारी चिकित्सा की उपलब्धता मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता की अनिवार्य आवश्यकता रही है। इसीलिए समाजशात्रियों ने स्वस्थ समृद्ध समाज की कामना करने वाले विचार को सतत् सर्व सुलभ उपलब्ध कराने एवं बनाने का संकल्प व्यक्त किया है। इसीलिए समाज एवं सत्ता के संचालकों/शासकों द्वारा इसे निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता रहा है। हमारे युग पुरूषों द्वारा संचालित गुरूकुल व आरोग्यधाम जैसी अनेकों संस्थायें इसकी साक्षात् प्रमाण रही हैं। सामाजिक ताना–बाना भी पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द की बुनियाद पर चलता रहा है। संस्कृतियों एवं सस्कारों ने विकास के नये आयाम स्थापित किये। विकास के इसी क्रम से बिछुड़े समाज में एक गैर बराबरी के समाज का भी निर्माण हुआ।

आजादी के 70 वर्षों के बाद भी भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को भारत की राष्ट्रीय (राजकीय) चिकित्सा पद्धति घोषित करने का गाँधी का संकल्प आज भी अधूरा है। योग के गुणगान के बाद भी हमारे सभी राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम आधुनिक चिकित्सा पद्ध तियों से ही संचालित हो रहे हैं। आयुष मंत्रालय के गठन के बाद भी आयुष पद्धतियों की स्थिति के बहुत सुधरने की संभावना भी नहीं दिख रही। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञों के मानकीकरण हेतु गठित संस्था मेडिकल कौंसिल आफ इण्डिया में व्याप्त खामियों से कहीं ज्यादा विवाद आयुष के शासकीय प्राधिकरणों में सामने आ रही हैं।

पूरा शासकीय आयुषतंत्र बैसाखियों के सहारे आधुनिक चिकित्सा तंत्र के सामानान्तर विकसित होने का ख्वाब देख रहा है। आयुष को विकास की वैतरणी पार कराने के लिए संचालित शासकीय प्रयासों के साथ ही हम शुभ चिंतकों की भी स्थिति सोचनीय है। होम्योपैथी के अस्तित्व पर वैश्विक प्रश्नचिन्ह लगने के बाद आज हमारी अन्य आयुष पद्धतियों की भी विश्वसनियता पर वैश्विक प्रश्न चिन्ह खड़ा है।

योग गुरूओं द्वारा योग को सभी रोगों के निदान में समर्थ बताने के बाद भी आयुर्वेद की औषधियों की सलाह देना व बेचना इसी बात की बागनी है। हमारी भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों से जुड़ी समृद्ध उपयोगी परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों के विलुप्त हो रहे ज्ञान के कारण इसके प्रति विश्वसनीयता समाप्त हो चली है। आयुष के तथाकथित विशेषज्ञों द्वारा अपनी पद्धति में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के घाल–मेल किये जाने से आयुष का वास्तविक स्वरूप भी नष्ट हुआ है। आज बड़े–2 आयुष के चिकित्सा संस्थान इन्ही परिस्थितियों में खाली या बंद होते जा रहे है। गुरूकुल आधारित आयुष के आरोग्य धामों के बंद होने से आयुष के गुणी लोगों की संस्था नगण्य होती जा रही है। शासकीय संरक्षण में संचालित आयुष के मेडिकल कालेजों, संस्थानों के निपुण विशेषज्ञों का आधुनिक चिकित्सा संस्थानों में आधुनिक चिकित्सा का कार्य करते हुए झोलाछाप जैसे विशेषणों से विभूषित होना सोचनीय है। अभी योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के राष्ट्रीय विधिक नियामक प्राधिकरणों का गठन भी नहीं हुआ, इसके पहले ही आयुष की अन्य पद्ध तियों के अनुरूप संस्थाओं की भरमार हो गयी। आज इन संस्थाओं से निकले विशेषज्ञ भी स्पा एवं रिजॉर्ट जैसे शरीर सौष्ठव केन्द्रों में अपनी सेवाएं दे रहे है।

आज शासकीय मान्यता होते हुए भी आयुष का चिकित्सा विज्ञान आमजन की बीमारी से निजाद दिलाने में अक्षम साबित हो रहा है। शासकीय मान्यताओं के बाद भी आयुष चिकित्सकों के प्रति समाज की निष्ठा एवं विश्वास में गिरावट आयी है। आज आयुष को समृद्ध एवं लोकोपयोगी बनाने के लिए आवश्यकता है, दक्ष कुशल ज्ञान की। हमें शासकीय मान्यताओं की परवाह न करते हुए अपनी गुणवत्ता को विकसित करने की भारतीय परम्परा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए आवश्यकता है लोक निर्मित एवं समर्पित गुरूकुल आरोग्य पीठों की। सम्भवतः इसी आवश्यकता का पूर्वाभास करते हुए आयुष मंत्रालय ने राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना दिल्ली में की थी। योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा गाँधी की समर्पित रचनात्मक लोक आरोग्य साधना का ही प्रतिफल है। यह अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद अपने इन्हीं उद्देश्यों के अनुरूप असरकारी कुदरती आरोग्य साधना की अनेकों प्रवृत्तियों का संचालन करती है। इस सामाजिक संस्था के साथ आजमन का संवाद स्थापित करने का निमित्त है, यह परिषद प्रभा। आप सभी सुधी शुभ चिंतकों, आरोग्य साधकों के सहयोग एवं मार्गदर्शन के बिना यह कार्य कठिन एवं दुष्कर है। इसी निमित्त एवं आपके सहयोग की अभिलाषा में.....आपका ही

संपादक.....

समाचार दर्पण

महामंत्री को भ्रातृशोक एवं स्वयं दुर्घटना में घायल–परिषद के महामंत्री डा0 अवधेश मिश्र के अनुज राजेश कुमार मिश्र उर्फ दीपक (उम्र 45 वर्ष) का मस्तिष्कघात से दिनाँक 6.08.2016 को सांयकाल 07:53 मिनट पर सहारा हास्पिटल लखनऊ में आकस्मिक निधन हो गया। शवयात्रा वाहन की एक ट्रक से टक्कर होने से श्री मिश्र जी को गंभीर चोटें आयी एवं दाहिने हाथ में फ्रैक्चर हो गया। परिषद परिवार ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शान्ति एवं परिवार को इस महाघात के सहने की शक्ति देने की प्रार्थना करता है। श्री मिश्र पारिवारिक आघातों के बीच आवश्यक संस्कारों को करने के साथ स्वास्थ्य लाभ ले रहे हैं।

वरिष्ठतम प्राकृतिक चिकित्सक डा0 लीलावरा ब्रह्मलीन हुये–96 वर्षीय डा0 लीलावरा ने डिब्रूगढ़ आसाम में जून 2016 में अंतिम सांसे ली। गांधी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का सतत् प्रचार–प्रसार करते हुए डा0 लीलावरा ने डिब्रूगढ़ आसाम में मद्यनिषेध की एक सभा को संबोधित करने के पश्चात् अंतिम सांस ली। डा0 लीलावरा के अंतिम दर्शन के पश्चात् उनके संकल्प को पूर्ण करने हेतु उनके संपूर्ण शरीर को शासकीय चिकित्सा संस्थान को शोध कार्य हेतु समर्पित कर दिया गया। आपने प्राकृतिक चिकित्सा को एक नयी दिशा के साथ आमजन तक गांधी वादी रूप में प्रस्तुत करने के सतत् प्रयास किये। आपके पुत्र आपके विचारों को आगे बढ़ाने में सतत् तल्लीन है। परिषद परिवार ईश्वर से ब्रह्मलीन आत्मा की शांति व परिवार को इस महाघात को सहने की शक्ति देने की प्रार्थना करता है। इस दुःख की घड़ी में परिषद आपके परिवार के साथ है।

प्राकृतिक चिकित्सा के कालजयी योगी डा0 वीरेन्द्र वर्मा (जन्म 11.08.1922 टीकापट्टी, पूर्णिया, बिहार) नहीं रहे–पूरे देश के विभिन्न प्रतिष्ठित प्राकृतिक चिकित्सालयों को संचालन से जुड़े रहे डा0 वर्मा ने सिलीगुड़ी बंगाल में एक प्रतिष्ठित चिकित्सालय की स्थापना की थी। इसी क्रम में समाज के अंतिम जन तक अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक अपनी सेवा पहुंचाने के उद्देश्य से पिपरीथान, बिहार के ग्रामीण परिवेश में एक सुव्यवस्थित प्राकृतिक चिकित्सालय की आधारशिला रखी। इसी चिकित्सालय के माध्यम से अनवरत सेवा करते हुए दि0 07.08.16 को पिपरीथान में डा0 वीरेन्द्र वर्मा ने अपनी जीवन यात्रा का को विराम दिया। श्री वर्मा अपने पीछे अपना पुत्र–पुत्रियों सहित भरा पूरा परिवार अपने कार्यों को करने के लिए समर्पित कर गये है। परिषद परिवार ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शांति दे और उनके परिवार को इस महाघात को सहने का साहस दे।

इस दुःख की घड़ी में पूरा परिषद परिवार तन–मन–धन से आपके परिवार के साथ है। आपके पुत्र डा0 राजीव वर्मा के माध्यम से आपका यह कार्य व साधना अनवरत् समाज में जाग्रत रहेगी, ऐसा विश्वास है।

आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग, राजस्थान सरकार ने राज्य के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को योगाभ्यास कराने के लिए 15 मिनट का योग प्रशिक्षक पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु चार सदस्यीय समिति गठित की–समिति में राजस्थान परिषद के डा0 शिवकुमार शर्मा(सेवानिवृत्त जिला आयुर्वेद अधिकारी हनुमानगढ़) को मनोनीत किया गया है। इसी प्रकार डा0 शिव कुमार शर्मा को डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर द्वारा ओम शिव संस्थान योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा विश्वविद्यालय, मंगवाढ़ चौराहा, चित्तौड़गढ़ की सम्बद्धता हेतु गठित निरीक्षण समिति में भी मनोनीत किया गया है।

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के कार्यों का मानकीकरण प्रारम्भ–परिषद अपने कार्यों के लोकोपयोगी, पारदर्शी, अत्याधुनिक तकनीकि युक्त सर्वमान्य व उद्देश्यपूर्ण बनाने की दृष्टि से अपने पूरे कार्य को कम्प्यूटर वेबसाईट, डिजिटल अध्ययन सामाग्री युक्त व पारदर्शी बनाने के लिए सतत् प्रयासरत् है। परिषद की वेबसाईट yognature.org आदि को उच्चीकृत कराने का कार्य द्रुतगति से चल रहा है। अपनी परिक्षाओं को भी मान्य एवं मानकीकृत करने की दृष्टि से केन्द्रीकृत शिक्षण–प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन की व्यवस्था परिषद व सरकार की विवरणिका, विधान एवं मानक अनुरूप समोन्नत करने के प्रयास जून 2016 से प्रारम्भ हो चुके है। सम्बद्ध संस्थाओं के संचालित अध्ययन केंद्रों के प्रशिक्षार्थियों हेतु कोड व लागइन पासवर्ड आदि का भी सृजन प्रारम्भ हो गया है। प्रशिक्षण–मूल्यांकन सुविधा सृजन हेतु सम्बद्ध संस्थाओं को दिये जाने वाले 25: व्यवस्था छूट को स्थगित करते हुए मुल्यांकन केन्द्रों हेतु निर्धारित व्यवस्था व्यय की सम्पूर्ण प्रतिपूर्ति परिषद द्वारा किये जाने की व्यवस्था बनायी गयी है। प्रशिक्षार्थियों के आवेदन अग्रसरण हेतु 200रू0 का शुल्क भी निर्धारित है। जून 2017 से संचालित परिषद के विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को क्रमानुसार अध्ययन सामग्री से जोड़ते हुए सेमेस्टर प्रणाली से किया जाना है। परिषद अपने सभी प्रशिक्षार्थियों का नामांकन करने के उपरान्त ही सेमेस्टार प्रणाली से जोड़ने की प्रक्रिया अपनायेगी। परिषद सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों को गुणवत्ता पूर्ण बनाने के लिए दूरस्थ पद्धति के अनुरूप मानकीकृत व्यवस्थाओं को अमल में ला रही है।

इस पूरे कार्य में सहयोग हेतु सभी संबध संस्थाओं से सुझाव व आवश्यक जानकारियां मांगी गई है। सभी पाठकों के भी सुझावों का स्वागत है।

CCRYN रोहिणी दिल्ली में संचालित अंतःरोगी प्राकृतिक एवं योग चिकित्सालय मे DNYS III वर्ष के दक्ष उत्तीर्ण छात्रों की व्यवहारिक अनुभव (Internshi) प्रदान करने पर सहमत–CCRYN उत्तीर्ण प्रशिक्षार्थियों के अतिरिक्त अन्य प्रशिक्षार्थियों को भी प्रयोगात्मक ज्ञान प्रदान करा सकती है। इच्छुक प्रशिक्षार्थी अपने पूर्ण प्रमाणिक अभिलेखों सहित परिषद कार्यालय में तत्काल सम्पर्क करें।

फरवरी 2017 को भुज, गुजरात में प्रस्तावित परिषद के 36वें महाधिवेशन की सहभागिता हेतु अवसर–अवगत हो कि परिषद उक्त अधिवेशन का उद्घाटन महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा एवं समापन माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा कराने हेतु प्रयासरत् है। समारोह आयोजन की अध्यक्षता मा0 मुख्यमंत्री गुजरात राज्य एवं मा0 राज्यमंत्री आयुष स्वतंत्र प्रभार भारत सरकार द्वारा नियोजित किया जाना भी प्रस्तावित है। आयोजन को सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से सभी प्रतिभागियों का पूर्व पंजीकरण उनकी सहभागिता की प्रकृति के अनुरूप किया जाना है। कार्यक्रम में प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने की प्रकृति का विस्तृत विवरण, सम्मेलन में दिये जाने वाले अपने व्याख्यान/शोधपत्र का पूर्ण प्रारूप अपने बायोडाटा एवं दो फोटो सहित 30 सितम्बर तक दिया जाना अनिवार्य है। प्रतिभागी अपने शोधपत्र व्याख्यान, निदान, तकनीक का सजीव प्रदर्शन कर सकते है। इस हेतु आपको अपना पूर्ण प्रस्तुतीकरण आलेख चित्र सहित टाइप कराकर हार्ड एवं साफ्ट रूप में प्रेषित करना होगा। इसी प्रकार प्रकाशित हो रही महासम्मेलन पत्रिका**(उल्लास)** हेतु आप अपने लेख व शोध प्रबन्ध, विज्ञापन आदि भेज सकते हैं। विज्ञापन शुल्क रंगीन एक पृष्ठ रू0 20,000 व एक रंग में 12,000 प्रस्तावित है। शुल्क डी.डी के माध्यम से ही स्वीकार्य होगें। प्रतिभागी महाधिवेशन स्थल पर आयोजित चिकित्सा शिविर, प्रदर्शनी आदि में भी सहभागिता कर सकते है। परिषद के सम्मानित सदस्यों एवं प्रतिनिधियों हेतु प्रतिनिधि शुल्क 500रू0 निर्धारित है। अन्य प्रतिभागियों हेतु 700रू0 प्रति प्रतिभागी निर्धारित है। जिसमें 3 दिन का आश्रम पद्धति के अनुरूप सामूहिक आवास, भोजन, व किट की व्यवस्था होगी। विशेष निजी आवास हेतु आपको पृथक आरक्षण कराना होगा जिसकी जानकारी परिषद कार्यालय से की जा सकती हैं।

केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद आयुष मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली बाह्य/10,20,30,50,100 अन्तः रोगी चिकित्सालय, की स्थापना एवं संचालन हेतु क्रमशः 5,10,20,30,50,80 लाख रूपये प्रतिवर्ष (अधिकतम 5 वर्षों तक) के अनुदान देने हेतु अपने निर्धारित नियमों एवं मापदण्डों के अनुरूप निर्धारित आवेदन पत्र पर आवेदन आमंत्रित करता है। इस हेतु ccryn.org या परिषद की वेबसाईट yognature.org का अवलोकन करें।

■ **श्रीभगवान चौपड़ियावाला**

प्राकृतिक चिकित्सा–सबसे सरल, सहज व सस्ती स्वस्थ्य की पद्धति

प्राकृतिक चिकित्सा का आधार

■ ऋषिराम गोयल

जब सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान निराकार व निर्गुण श्री हरि की रचना करने की इच्छा हुई तो वे पाँच भागों में विभक्त होकर भगवान बन गए अर्थात् भ=भूमि ग = गगन, व = वायु, अ = अग्नि तथा न = नीर। ये पाँच भाग ही पंच तत्व अथवा पाँच महाभूत हैं जो सृष्टि के समस्त जीव प्राणियों तथा पदार्थों में व्याप्त हैं। सभी चर, अचर, जड़-जंगम इन्हीं से बने हैं।

पंच महाभूतों के गुण

1. आकाश–जिसका गुण शब्द, इन्द्रीय श्रवण तथा रंग है हल्का नीला। शरीर में स्थान बरौनी से ऊपर का भाग।

2. वायु–जिसमें 2 गुण शब्द + स्पर्श है। इन्द्रीय त्वचा, शरीर में स्थान है। हृदय से बरौनी तक तथा रंग है हरा।

3. अग्नि–जिसमें तीन गुण–शब्द + स्पर्श + रूप है। इन्द्रीय नेत्र शरीर में स्थान गुदा से हृदय तक तथा रंग है लाल।

4. जल–जल गुण शब्द + स्पर्श + रूप + रस हैं। इन्द्रीय है जिव्हा। शरीर में स्थान घुटनों से गुदा तक तथा रंग है गहरा नीला।

5. पृथ्वी–जिसमें पाँच गुण हैं–शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गंध हैं। इन्द्रीय है नासिका। शरीर में स्थान है पैरों से घुटनों तक तथा रंग है पीला।

इन पाँचों तत्वों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है वह निराकार सर्वव्यापी शक्ति जिससे ये पाँचों भूत उत्पन्न हुए हैं। गाँधी जी के अनुसार यह शक्ति राम नाम है।

(दशरथ पुत्र राम नहीं)–सर्वव्यापी राम है निराकार ब्रह्म अथवा प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, आस्था तथा विश्वास के अनुरूप सर्व शक्तिमान जिसे प्रकृति भी कह सकते हैं। अर्थात् आध्यात्मिक चेतना को विकसित करके तथा आत्मा परमात्मा का योग इस पद्धति में स्वास्थ्य की कुंजी है।

इन पंचभूतों/तत्वों का संतुलन बिगड़ने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। किसी एक तत्व की कमी से व्यक्ति रोग ग्रस्त हो जाता है। अतः इन पंच तत्वों के विषय में कुछ संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है।

1. आकाशः–

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है कोशिकाओं तथा त्वचा के छिद्रों के बीच खाली स्थान भी आकाश है। परन्तु इसका विशेष स्थान सिर, कण्ठ, हृदय, उदर व कटि प्रदेश हैं। इस तत्व के कमजोर होने से शोक, काम, क्रोध, मोह एवं भय तथा व इससे पैदा होने वाले रोग तथा पाचन तंत्र कमजोर हो जाता है। आकाश तत्व को आरोग्य सम्राट भी कहा जाता है। आकाश तत्व की वृद्धि के उपाय ब्रह्मचर्य, संयम, सदाचार, मानसिक अनुशासन एवं संतुलन, विश्राम, शिथलीकरण, गहरी नींद, प्रसन्न चित्त रहना तथा स्वस्थ मनोरंजन आदि हैं।

उपवास इस तत्व की कमी दूर करने का सबसे महत्वपूर्ण उपचार है। उपवास से ज्वर, संग्रहणी, पेचिश, दस्त, सर्दी, जुकाम, फोड़े, फुन्सी, चेचक आदि तीव्र रोग तथा बहु मूत्र, गठिया, अजीर्ण, कब्ज, मोटापा आदि जीर्ण रोग भी ठीक हो जाते हैं तथा जीवन शक्ति बढ़ती है।

2. वायुः–

वायु तत्व शरीर के सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। व्यक्ति भोजन तथा जल के कुछ दिन तक जीवित रह सकता है। परन्तु बिना वायु के नहीं। वायु में ऑक्सीजन, जलवाष्प के अतिरिक्त कार्बन डाईआक्साइड, नाइट्रोजन, ओजोन, धूलकण तथा अन्य गैसीय तथा ठोस पदार्थ भी मिले होते हैं। श्वास के द्वारा आक्सीजन नासिका रन्ध्रों से होती हुई श्वास नली के द्वारा फेफड़ों तक जाकर वहाँ से नाईट्रोजन प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल देती है। शरीर का संतुलित तापमान बनाए रखती है। वायु की शुद्धि सूर्य किरणों, जल, ऋतु परिवर्तन के अतिरिक्त अग्निहोत्र से होती है।

शुद्ध वायु में प्रातः-सायं नंगे पैर तथा नंगे शरीर भ्रमण से लम्बे व गहरे सांस लेने, मालिश, व्यायाम, अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) से वायु तत्व की शरीर में वृद्धि होती है। यम में–अहिंसा, सत्य अपरिग्रह ब्रह्मचर्य तथा अस्तेय सम्मिलित हैं तथा नियम में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर भक्ति सम्मिलित हैं। अपनी सामर्थ्य तथा आवश्यकता के अनुसार कुशल व प्रशिक्षित योगाचार्य के सान्निध्य व परामर्श से कुछ आसन, प्राणायाम तथा षठ यौगिक क्रियाएं नेति, जलनेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक) षट, चक्रों यथा मूलाधार, स्वाधि स्थान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा चक्र की शुद्धि तथा कुछ हस्तमुद्राएं विशेषकर ज्ञान, वायु, सूर्य, लिंग, पृथ्वी, प्राण, अपान, शून्य, हृदय, वरुण आदि भी वायु तत्व की वृद्धि करते हैं।

वायु तत्व को बढ़ाने वाले खादय पदार्थ हैं, फल, दूध, दही, हरे साग-सब्जियाँ, चोकर सहित गेहूँ के आटे की रोटी, छिलके सहित दाल तथा हाथ का कुटा बिना पॉलिश के चावल।

3. अग्नि तत्वः–

अग्नि दृश्य तत्व है। इसका स्रोत भी प्रकाश के समान सूर्य ही है। सूर्य किरणों

से विटामिन-डी नि:शुल्क प्राप्त होता है जिसमें हड्डियाँ मजबूत होती हैं। पसीने के रूप में शरीर की गंदगी बाहर निकलती है, पाचन क्रिया में सुधार तथा नाड़ी तंत्र स्वस्थ होता है। चिकित्सा के रूप में स्वस्थ्य होता है। चिकित्सा के रूप में गरम बोतल, गरम बालू की थैली, गरम ईंट, गरम वायु, गरम पत्थर, भाप तथा गरम जल आदि की सिकाई तथा भाप स्नान और गरम जल से स्नान लाभकारी है।

4. जल तत्व:-

जल तत्व भी दृश्य तत्व है। जल तथा रस अपने शुद्ध रूप में राक ही हैं। परन्तु अन्य भौतिक पदार्थों के संयोग से जल गंदा, मीठा, कसैला, खट्टा तथा नमकीन आदि हो जाता है।

इसका कार्य वस्तुओं को गीला करके मिट्टी आदि को पिण्डाकार रूप बना देना, प्राणियों की प्यास तृप्त करके उन्हें जीवित रखना, ताप की निवृत्ति करना, शरीर की वाह्य व आन्तिरिक स्वच्छता प्रदान करना, भ्रम, क्लान्ति, मूर्छा, पिपासा, तंद्रा, वमन, विबंध, निद्रा आदि को दूर करना है। जल ही षट रसों का कारक है। जल शरीर के तापमान को स्थिर रखता है, त्वचा की कार्यशीलता बढ़ाता है, रक्तचाप को नियमित रखता है, नाड़ियों को उत्तेजित करता है, हृदय की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। मांस-पेशियों व त्वचा के समीप रक्त कोषों को संकुचित करता है तथा श्वास क्रिया को मध्यम करता है।

इस प्रकार जल स्वयं में एक महत्वपूर्ण औषधि है। हमारे शरीर में लगभग 70 प्रतिशत जल है। विभिन्न प्रकार के स्नान, तैरना, समुद्र स्नान, झरना स्नान, खनिज जल स्नान, गीली चादर लपेट, संपूर्ण स्नान तथा स्थानीय स्नान (जैसे-कटि स्नान, पैर स्नान, तलवा स्नान, रीढ़ स्नान, नेत्र स्नान, मेहन स्नान, कर्ण स्नान, गुदा स्नान) भीगी पट्टियाँ आदि जल तत्व की वृद्धि करती हैं। तथा अनेक रोग दूर करती हैं। प्रतिदिन कम से कम 8-10 ग्लास पीना चाहिए। प्रात:काल उठने के बाद उषा पान (जलपान) घूँट-घूँट करके धीरे-धीरे पीना चाहिए।

जल इस प्रकार पीना चाहिए जैसे ठोस पदार्थ खा रहे हों। जल सदैव बैठकर पीना चाहिए। जल को भोजन के 1 घंटा पहले तथा 1 घंटा बाद में पीना चाहिए। यदि रात्रि में तांबे के बर्तन में रखा पानी, अथवा तांबे का सिक्का डाला हुआ पानी पिया जाए तो ज्यादा लाभकारी होता है। पानी में एक नींबू तथा नींबू व शहर भी मिलाया जा सकता है।

एनिमा तथा जलनेति का प्रयोग कई बीमारियाँ दूर करती है।

5. पृथ्वी तत्व:-

पृथ्वी अथवा मिट्टी में पाँचों गुण हैं। यह दुर्गन्ध नाशक है, शरीर का तापमान स्थिर रखती है व जल को निर्मल करती है।

मिट्टी के कई प्रकार हैं जैसे-लाल, पीली, काली, सफेद, मुल्तानी, सज्जी, बालू आदि।

मुल्तानी मिट्टी तथा लाल मिट्टी (गेरू) का प्रयोग अनेक बीमारियों विशेषकर त्वचा तथा सिर के रोगों में तथा सौंदर्य प्रसाधनों में होता है।

मिट्टी की पट्टी अनेक प्रकार से शारीरिक दर्द दूर करती है तथा विजातीय द्रव्य सरलता से बाहर निकाल देती है।

सूखी, गीली मिट्टी से स्नान, पंक स्नान, रज स्नान, ठंडी, गरम, मिट्टी की पट्टी तथा बालू भक्षण का प्रयोग अनेक रोगों में होता है। नंगे पैर घास पर अथवा मिट्टी में चलने से व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्त

स्वास्थ्य का अर्थ है स्व में स्थिति। अर्थात् शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य। स्वस्थ शरीर में रोगों से लड़ने की अद्भुत क्षमता है। बाहरी हानिकारक तत्वों से सुरक्षा तथा आन्तरिक टूट-फूट की मरम्मत करने की भी क्षमता है। वैक्टीरिया से लड़ने के लिए श्वेत कणों का शरीर में निर्माण सतत प्रक्रिया है। अत: विजातीय द्रव्य शरीर में न जाएं अथवा रासायनिक प्रक्रिया आदि से पैदा अवशिष्ट तथा विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलते रहें तो व्यक्ति स्वस्थ रहता है। विजातीय तत्व पाँच तत्वों तथा महतत्व को असंतुलित करके बीमारी पैदा करते हैं।

सभी बीमारियों की जड़ कब्ज है। जब अवशिष्ट पदार्थ मल, मूत्र स्वेद आदि के द्वार बाहर निकलने के बजाए मलाशय, बड़ी आँत अथवा शरीर के अन्य भागों में सड़ने लगते हैं। तो कब्ज तथा त्वचा रोग तो होते हैं। ये तत्व रक्त में मिलकर पूरे शरीर में संचरण करते हुए किसी भी भाग पर आक्रमण करके हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को भी खराब कर देते हैं। इस पद्धति में आहार ही औषधि है किसी अन्य प्रकार की। औषधि की आवश्यकता नहीं है। यदि हम संतुलित आहार लेते रहें तथा प्रकृति के नियमों का पालन करते रहें।

हमें केवल भूख लगने पर ही खाना चाहिए, बिना भूख के नहीं। पानी खाना खाने से 1 घंटे पहले तथा 1 घंटे बाद में पीना चाहिए।

हमें भोजन अच्छी प्रकार से चबाकर खाना चाहिए जिससे जिव्हा की 6 ग्रंथियों से निकलने वाले रस तथा लार उसे बारीक पीसकर तल बनावे जिसे पाचन तंत्र के अन्य भागों पर ज्यादा भार न पड़े। तथा पानी को भी धीरे-धीरे, छोटी-छोटी घूँट-घूँट करके पीना चाहिए जैसे हम ठोस पदार्थ खा रहे हों। हमारा भोजन सात्विक, सुपाच्य, पौष्टिक, ताजा तथा संतुलित होना चाहिए।

जीवित (बिना पके) खाद्य पदार्थ जैसे अकुंरित अनाज, दालें, फल, कच्ची सब्जियाँ, मूली, खीरा, ककड़ी, टमाटर, लौकी आदि ज्यादा लाभदायक हैं।

हमारे शरीर में 20 प्रतिशत अम्ल तथा 80 प्रतिशत क्षारीय द्रव्य है। अत:

हमारे भोजन में भी इनका यही अनुपात होना चाहिए।

संतुलित तथा पौष्टिक भोजन में निम्न तत्व हमारे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं।

1. कार्बोहाईड्रेट्सः–

स्टार्च तथा ग्लूकोज शरीर में ऊतकों का निर्माण तथा शरीर को शक्ति प्रदान करके, पाचन गति तेज करके पेट साफ करते हैं। ये गेहूँ, चावल, जौ, मक्का, मटर, मसूर, आलू, चुकन्दर, शकरकंदी, शक्कर, शहद तथा सेब आदि में पाये जाते हैं।

2. प्रोटीनः–

शरीर के निर्माण तथा बीमारियों के वैक्टीरिया से लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। अम्ल तथा क्षार को संतुलित करते हैं; यकृत में एकत्रित होकर शरीर को ऊर्जा देते हैं। शरीर में स्थित 600 खराब कोशिकाओं के निर्माण में सहायता करते हैं। आमाशय में पहुँचकर प्रक्रियाओं में शामिल होकर रक्त में मिल जाते हैं।

प्रोटीन, अनाज, दालों, पनीर, मक्खन, दुग्ध तथा दुग्ध पदार्थों के अतिरिक्त पशु मांस में भी उपलब्ध है।

3. वसाः–

फैट शरीर में ऊर्जा प्रदान करती है। यकृत में ऑक्सीकरण के बाद यह ऊतकों को एकत्रित करके जोड़ने में सफल होती है। आन्त्राशय में जाकर ये अम्ल बन जाती है।

वसा के स्रोत हैं–दूध, घी, मक्खन, पनीर, सरसों, नारियल, तिल, जैतून, सूरजमुखी तथा अन्य तिलहन तथा काजू, अखरोट आदि मेवे तथा मांस-मछली आदि हैं।

4. विटामिन–

शरीर में ऊर्जा पैदा करके चयापचय मेटाबाल ऊर्जा को आवश्यक ऊर्जा देकर शरीर के विकास में सहायक होती है। कुछ विटामिन जैसे बी-1,2, 6, 12 जल में घुलनशील हैं तथा कुछ ए.डी.ई.के. वसा में घुलते हैं।

(i) विटामिन-ए–आँखों, त्वचा तथा ऊतकों को स्वस्थ रखते हैं। इनकी कमी से रतौंधी रोग तथा त्वचा शुष्क हो जाती है। ये दूध, मक्खन, घी, पनीर, पीले फल, सब्जियों तथा मछली के तेल में मिलते हैं। इनकी कमी से बेरीबेरी रोग होता है।

(ii) विटामिन-बी–मांसपेशियों को मजबूती तथा कार्य करने की ऊर्जा प्रदान करती है। इनकी कमी से मांस पेशियों में कमजोरी पैदा होती हैं। ये चावल, गेहूँ, खमीर, पनीर, दूध, दही, हरी व पत्तेदार सब्जियों, अंकुरित अनाज आदि में मिलते हैं।

(iii) विटामिन-सी–दन्त, मसूढ़ों, हड्डियों के जोड़ मजबूत करती है। इसकी कमी से स्कर्वी रोग तथा मसूढ़ों से रक्त बहता है। विटामिन-सी खट्टे व क्षारीय फलों, हरी मिर्च, नींबू, संतरा, मौसमी, आंवला, अमरूद आदि में मिलते हैं।

(iv) विटामिन-डी–विटामिन-डी से हड्डियों व दांतों को मजबूती मिलती है। विटामिन-डी की कमी से हाथ-पैर की हड्डियाँ मुड़ जाती हैं तथा उनका आकार विकृत हो जाता है। ये सूर्य की रोशनी, दूध, दुग्ध पदार्थ अण्डे व मछली के तेल में मिलते हैं।

(v) विटामिन-ई–विटामिन-ई प्रजनन तंत्र को मजबूत करती है तथा इसकी कमी से नपुंसकता हो सकती है। हरी सब्जियाँ, टमाटर, विभिन्न खाद्य तेल आदि में उपलब्ध होती है।

विटामिन के रक्त को बहने से रोकता है। कमी से अत्यधिक रक्त प्रवाह हो जाता है। स्रोत हैं–हरी व पत्तेदार सब्जियाँ।

5. खनिजः–

(i) कैलशियम–शारीरिक क्रियाशीलता, दांतों व हड्डियों निर्मित करके मजबूती देती है, मांसपेशियों तथा तंत्रिकाओं के निर्माण में सहायक है। इसकी कमी से रिकेट रोग होता है। ये दूध, घी, मक्खन, पनीर, मूली, गोभी, बादाम आदि मेवा व अण्डे में उपलब्ध है।

(ii) सोडियम–नमक को संतुलित करता है।

(iii) फासफोरस–मस्तिष्क मजबूत करता है, कैलशियम व विटामिन-डी के साथ मिलकर हड्डियों को मजबूत करता है। इसकी कमी से शरीर में चीटियाँ से चलती हैं तथा हाथ-पैर सो जाते हैं, सुन्न हो जाते हैं।

(iv) क्लोराइड–नमक से प्राप्त होता है तथा अम्ल व क्षार को संतुलित करता है।

(v) पोटेशियम–नाड़ी संस्थान के आवेगों से संचालन में सहायक है। इसकी कमी से शरीर में क्षार तत्व बढ़ जाता है। यह दुग्ध, अण्डा, मांस, मछली में मिलता है।

(vi) मैगनेशियम–नाड़ियों की क्रियाशीलता में सहायक है। इसकी कमी से हाथ-पैर में कम्पन की बीमारी होती है।

(vii) लोहा–कोशिकाओं तथा ऊतकों को ऑक्सीजन पहुँचाता है। इसकी कमी से शरीर में कमजोरी व थकान महसूस होती है। यह पालक, बथुआ, बैगन, अनार, सेब, टमाटर, आंवला, अमरूद आदि में मिलता है।

(viii) जिंक–कोशिकाओं की वृद्धि में सहायक है।

(ix) तांबा–हीमोग्लोबिन के निर्माण में सहायक है। इसकी कमी से हड्डियों के रोग होते हैं, गेहूँ, अण्डा, मास आदि में उपलब्ध है।

(x) आयोडीन–थाईरायड ग्रंथियों में थाईरोक्लीन हारमोन बनाता है। इसकी कमी से गलण्ड रोग होता है।

(xi) मैगनीज–मैगनीज की कमी से मांसपेशियों तथा हड्डियों के जोड़ कमजोर होते हैं।

(xii) फ्लोराईड–हड्डियों व दांतों को मजबूत करता है।

(xiii) जल–जल भोजन को चबाकर पचाने योग्य बनाकर (लार के मिलने से)

स्थापित ® 1935 अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण केन्द्र

मेडिकल हाऊस सन 1935 से चिकित्सा सम्बधी पुस्तकों का प्रकाशन एवं मासिक चिकित्सा देहली पत्रिका का गत 57 वर्ष से सफल सम्पादन करता आ रहा है। अब संस्था ने निर्णय लिया है कि योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को जन–जन तक पहुचाया जाये आजकल प्राकृतिक चिकित्सा की मांग निरन्तर बढ रही है। अनेक प्रतिष्ठानों में योग एवं प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए रोजगार के स्वर्ण अवसर उपलब्ध हो रहे है। हैल्थ क्लब मे भी योग एवं प्राकृतिक चिकित्सकों की मांग होती है। बीमार एवं विकलांग व्यक्तियों का नियमित अभ्यास कर प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे लाभ प्राप्त होते है। असाध्य रोग, दमा, गठिया, गैस नाक, कान, गला, साईटिका के दर्द, रक्तचाप, मानसिक रोग, मधुमेह, शारीरिक दुर्बलता, नेत्र रोग, पोलियो आदि रोगों का सफलता पूर्वक उपचार किया जा सकता है। उपरोक्त कथन का भावार्थ यह है कि आप प्राकृतिक चिकित्सक Diploma in Naturopathy & Yogic Science (D. N. Y. S.) तीन वर्षीय परीक्षा उत्त्तीर्ण कर सफल चिकित्सक बन सकते है।

Rs.150.00

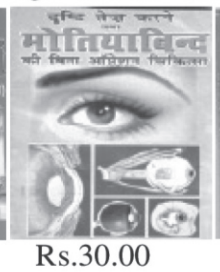

Rs.30.00

Rs.50.00

Rs.200.00

Rs.25.00

Rs.40.00

Rs.100.00

Rs.40.00

Rs.60.00

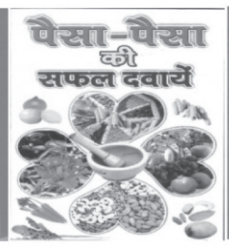

Rs.40.00

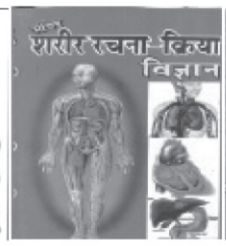

Rs.80.00

Rs.40.00

Rs.60.00

Rs.60.00

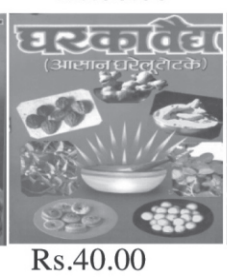

Rs.40.00

Rs.200.00

Rs.40.00

Rs.50.00

Rs.80.00

Rs.60.00

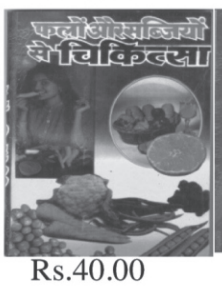

Rs.40.00

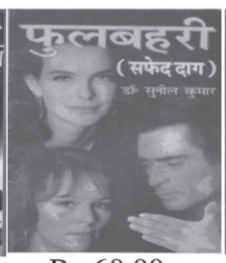

Rs.60.00

Rs.70.00

Rs.30.00

स्थापित-1935 ®

मेडिकल हाऊस

ए हेल्थ केयर सेन्टर फार नेचुरोपैथी

चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता	अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण केन्द्र	होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक दवाईयों के विक्रेता

ई-8, पटेल नगर-II, (मार्केट), गाजियाबाद (उ0प्र0) 201001

Phone : 0120-4210257, 2835551, 9818647747, 7838958380

Visit : www.medicalhousedelhi.com, www.sexayurveda.com

E-mail : info@medicalhousedelhi.com

प्राकृतिक, आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, ऐलोपैथिक, स्त्री एवं बाल रोग, पुरूष गुप्त रोग, ज्योतिष एवं वास्तु, एक्यूप्रेशर सम्बन्धी पुस्तकें एवं उपकरण, आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक दवाईयाँ सभी मदर टिंक्चर्स, पोटेंसी, (इंडियन एवं जर्मन) सौन्दर्य मेकअप के उत्पाद उपलब्ध है।

वात रोग, मधुमेह, सफेद दाग, पथरी रोग, बवासीर, दमा एवं क्षय रोग, बालों के रोग, पुरूष गुप्त रोग, मोटापा, कील मुहाँसे और झाईया, शराब छुड़ाने के सफल योग उपलब्ध है।

M.I.M.S. DELHI मासिक चिकित्सा देहली का सदस्य बनने के लिए 260/– रू0 एवं 1 फोटो पासपोर्ट भेजकर अंक व प्रमाण पत्र, परिचय पत्र प्राप्त करें।

तथा रस में मिलाकर रक्त में समाहित करता है तथा प्रत्येक कोशिका तक भोजन को पहुँचाता है। अवशिष्ट (त्याज्य) पदार्थों को मल-मूत्र, स्वेद आदि के माध्यम से शरीर से विर्सजित करके आन्तरिक शुद्ध करता है। इस प्रकार शरीर को निरोग रखने में सहायक है।

6. क्षारतत्वः–

जैसा कि कहा जा चुका है भोजन में क्षार तत्व 80 प्रतिशत होने चाहिए इनके स्रोत निम्न हैं–क्षारीय सब्जियाँ, पत्ता गोभी, ककड़ी, खीरा, चना व सरसों का शाक, बथुआ, मूली, शलजम के पत्ते तथा टमाटर ये सभी बिना पकाए भी खाए जाते हैं।

श्वेत क्षारीय सब्जियाँः–मूली, शलजम, प्याज, फूलगोभी, गाजर, चुकन्दर, तोरी, लौकी, गाजर, लहसुन आदि (कच्ची खाई जा सकती हैं)। सभी क्षारीय फल हैं जैसे–मौसमी, संतरा, चकोतरा, नींबू आदि सभी मीठे फल जैसे खूजर, अंजीर, केला, पपीता, आम, अमरूद आदि।

अर्ध खारे फल–सेब, नाशपाती, खुबानी, अनानास, अनार आदि।

इसक अतिरिक्त हमारी दिनचर्या स्वस्थ व ऋतुचर्या के अनुकूल होनी चाहिए।

ऋतुएं 6 हैं–1. वसंत, 2. ग्रीष्म, 3. वर्षा, 4. शरद, 5. हेमन्त तथा 6. शिशिर।

वसंत ऋतु–शीत व ग्रीष्म का संधि काल है।

हेमन्त तथा शिशिर के संचित कफ सूर्य की किरणों से द्रवित होकर कुपित होता है। फलस्वरूप खांसी, जुकाम, गले में खराश, टांसिल में सूजन शरीर में सुस्ती तथा भारीपन रहता है। जठराग्नि मंद हो जाती है। कटु, तिक्त, काषाय खाद्य पदार्थ लेने चाहिए। चिकने, खट्टे तथा मीठे पदार्थ कम खाने चाहिए। प्रातःकाल जल्दी उठकर योग प्राणायाम तथा सैर आदि करनी चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु–ग्रीष्म ऋतु में तेज लू चलती है तथा गर्मी ज्यादा होती है। पृथ्वी का जलीय अंश कम हो जाता है।

अतः शीतल तरल मधुर स्निग्ध पदार्थों जैसे ठंड़ाई, शिकंजी, बेल, मौसमी, अनार, अंगूर, खरबूजा, तरबूज, सत्तू आदि का सेवन करना चाहिए तथा हल्के रंग के सूती वस्त्र लाभदायक हैं। इस मौसम में पित्त सम्बन्धी रोगों से बचाव करें तथा हरी सब्जियाँ, हरा धनिया, पोदीना आदि का सेवन उपयोगी है।

वर्षा ऋतु में जठराग्नि ज्यादा मंद हो जाती है तथा वात दोष कुपित होता है। अजीर्ण व थकान होती है। मच्छर, मक्खी आदि के कारण मलेरिया, हैजा, पीलिया, अतिसार तथा डेंगू आदि रोग फैलते हैं। इस ऋतु में सुपाच्य, सादा भोजन, तिल का तेल, नींबू, अदरक, आम, जामुन आदि का प्रयोग करना चाहिए तथा वातावरण व शरीर की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

शरद ऋतु को सभी रोगों की माता कहते हैं। इस ऋतु में पित्त रोग, ज्वर, पेचिश, उल्टी, दस्त, मलेरिया आदि फैलते हैं। मीठे, तिक्त, काषाय, पदार्थ जो पित्त दोष का शमन करें लेने चाहिए। इस मौसम में सब्जियों का प्रयोग कम करके दूध, गेहूँ, ज्वार मक्का, चावल, सिंघाड़े, बादाम, खजूर, आंवला, काली मिर्च, सौंफ आदि का ज्यादा प्रयोग करना चाहिए।

हेमन्त ऋतु में सूर्य की किरणें ज्यादा प्रखर नहीं होतीं। खानपान वस्त्र आदि का चुनाव उसी प्रकार करना चाहिए।

शिशिर ऋतु में जठराग्नि सुरक्षित रहती है तथा सर्दी बढ़ जाती है। खट्टे-मीठे पदार्थ, मक्खन, दूध, घी, तेल, गेहूँ, गुड़, उड़द, गन्ना, आंवला, हरे साग, गहरे रंग के गरम व ऊनी वस्त्र लाभदायक हैं।

ठंड से बचाव तथा सूर्य स्नान (धूप सेंकना) करना चाहिए

भोजन करने के अन्य नियम– शान्तचित्त प्रसन्न मन तथा एकाग्र होकर भोजन करना चाहिए। टी.वी., पत्र-पत्रिकाओं तथा बातचीत से दूर रहना चाहिए। हमारा मस्तिष्क अन्तःस्रावी ग्रंथियों के माध्यम से हमें संदेश भेजता है। कि अब हमारा पेट भरने वाला है। अतः भोजन बन्द कर देना चाहिए। परन्तु एकाग्र चित्त न होने पर हम संदेश को पकड़ नहीं पाते तथा हम आवश्यकता से अधिक भोजन कर जाते हैं जो बाद में परेशानी पैदा करता है। कभी-कभी मस्तिष्क भी संदेश को पकड़ नहीं पाते तथा हम आवश्यकता से अधिक भोजन कर जाते हैं जो बाद में परेशानी पैदा करता है। कभी-कभी मस्तिष्क भी संदेश देना भूल जाता है। हमें प्रयास करना चाहिए डिब्बा बंद, जंकफूड, फास्टफूड आदि का प्रयोग न करें तथा प्लास्टिक के बर्तनों में न खाएं। अंकुरित अनाज व दालें, गेहूँ के ज्वारे तथा फल व हरी सब्जियाँ बिना पकाए खाया करें। भोजन ज्यादा जीवित तथा कम मृत (पकाया हुआ हो) होना चाहिए। इस प्रकार प्राकृतिक नियमों का पालन करके तथा उचित खानपान रखकर हम रोग मुक्त रह सकते हैं तथा रोग होने पर साधारण चिकित्सा से स्वस्थ रह सकते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण की है। अशुद्ध जल ने नदी सरोवर तथा सागर ही नहीं पृथ्वी के अंदर तक प्रदूषण फैला दिया है। परिणाम स्वरूप पीने का स्वच्छ जल, कृषि, फल, फूल, सब्जियाँ तथा वृक्षों पर पैदा होने वाले फल भी शुद्ध नहीं रहे। सुख सुविधा प्रदान करने वाले उपकरण जैसे–टी.वी., ए.सी. तथा वाहन आदि तथा इन्हें चलाने तथा बनाने वाले उद्योग तो बहुत ही ज्यादा प्रदूषण फैला रहे हैं। फिर भी हम प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ माध्यम, ध्यान उपासना, प्रकृति संरक्षण, योग, भक्तियोग, राजयोग का सहारा लेकर तथा एक्यूप्रेशर, पंचर, रेकी, विपश्यना प्रेक्षा आदि का सहारा लेकर तथा ध्यान सकारात्मक सोच के आधार पर काफी कुछ स्वस्थ रह सकते हैं। प्रकृति प्रदत्त जड़ी-बूटी तथा घर की रसोई में उपलब्ध होने वाले कुछ मसाले, हल्दी, अदरक, सौंफ, काली मिर्च आदि का प्रयोग भी स्वस्थ जीवन में सहायक है। ■

आधे सिर के दर्द की प्राकृतिक चिकित्सा

■ डॉ. मदन गोपाल बाजपेयी

जून माह में मेरी बांदा चिकित्सालय में जिले के एक प्रथम श्रेणी अफसर की पत्नी आयु 46 वर्ष आई। उनकी मुख्य समस्या अधकपारी (आधे सिर का दर्द) की थी। चेहरे पर निराशा, थकावट और परेशानी के भाव लिए उसने आते ही पूछा कि क्या मेरा यह अधकपारी का दर्द समाप्त हो सकता है?

मैने नाड़ी, जिह्वा पेट का परीक्षण किया और फिर कहा कि आपका शरीर तो लगातार रोग को भगाने का प्रयास कर रहा है किन्तु उसे आप जाने कहाँ दे रही हैं? उस महिला ने कहा कि यह कैसे?

मैंने कहा कि अच्छा आप रोग की शुरूआती दौर से लेकर समाप्ति तक के लक्षण बताने का कष्ट करें। उसने बताया कि **जिस दिन अधकपारी का दौरा आना होता है।** उस दिन सुबह से ही चक्कर, मितली, आँखों के आगे चिनगारी, झुनझुनाहट का अनुभव होता है। इसके पश्चात् आधे सिर में दर्द की धीरे-धीरे शुरूआत होती है। **दर्द के साथ-साथ उल्टी हो जाती है तो दर्द में शान्ति मिलती है।** जम्भाइयाँ भी आती हैं, सोने की इच्छा होती है। यदि नींद आ जाती है तो दर्द हल्का पड़ जाता है। मैंने कहा कि फिर आप क्या करती हैं?

उसने कहा कि **दर्द की गोली** डॉक्टर से लिखवाकर रखे हुए हूँ। उठाकर खा लेती हूँ। जिससे राहत मिल जाती है पर कभी-कभी तो ये गोलियाँ भी राहत नहीं दे पातीं। मैंने कहा कि अब तो आप समझ गई होंगी कि आपका शरीर रोग से छुटकारा पाने का किस तरह प्रयास करता है? आपने बताया कि अगर उल्टी हो जाती है तो दर्द शान्त हो जाता है और नींद आने पर भी दर्द शान्त हो जाता है। उपरोक्त लक्षण इस बात के प्रमाण हैं कि शरीर में अवांछित **पित्त (विकार) संचित है** और यह संचय शरीर की सहन क्षमता पार कर चुका है। इसके बावजूद भी शरीर उसे उल्टी से बाहर फेंकने का प्रयास कर रहा है। किन्तु आप उसे दवाइयाँ खाकर रोकने का प्रयास कर रही हैं। **सोने से दर्द में शान्ति** का मतलब है कि शरीर पूर्ण विश्राम यानि नाड़ी तंत्र का आराम चाह रहा है न कि नाड़ी तंत्र की उत्तेजना। अब इस रोग का स्थायी उपचार एकदम स्पष्ट है–**वह है शरीर शोधन।** यदि शरीर के भीतर जमा अवांछित पित्त (विकार) को बाहर कर दिया और फिर नाड़ी तंत्र को विश्राम दायक आहार-विहार की व्यवस्था कर दी जाए तो आप हमेशा-हमेशा के लिए रोगमुक्त हो जाएंगी यदि दवाइयों से इसे दबाते रहेंगे तो किसी न किसी जीर्ण रोग से ग्रस्त होने की प्रबल संभावना रहेगी। दमा, गठिया, मधुमेह आदि जीर्ण रोग छोटे-मोटे रोगों को दबाए जाने के दुष्परिणाम हैं।

अभी-अभी अमेरिका से प्रकाशित एक आंकड़े से स्पष्ट हुआ है कि अमेरिकी बच्चे व किशोर जरूरत से ज्यादा दर्द निवारक दवाओं का सेवन कर रहे हैं। लेकिन इस बात का आभास उनके माता-पिता को नहीं हो पाता। बैंकुअर में आयोजित अमेरिकन हेडेक सोसाइटी की सालाना बैठक के दौरान इस सम्बन्ध में एक रिपोर्ट जारी की गई। रिपोर्ट में बताया गया कि 6 से 18 साल की उम्र के 20 प्रतिशत बच्चे व किशोर दर्द निवारक दवाओं का इस्तेमाल करना बच्चों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। ओहियो स्थित क्लीनिक के अनुसार पांच में एक बच्चा अधिक मात्रा में दर्द निवारक दवा का इस्तेमाल कर रहा है। विशेषज्ञों के अनुसार हर डॉक्टर की जिम्मेदारी है कि बार-बार सिर दर्द की शिकायत करने वाले बच्चे को आवश्यक दवा की समुचित मात्रा के बारे में जरूरत बताएं, क्योंकि दर्द निवारक दवा के अत्याधिक इस्तेमाल किडनी फेल होने व गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल रक्तस्राव का खतरा रहता है। अनुमान है कि अमेरिका में 15 साल की उम्र में 15 प्रतिशत किशोरी को लगभग रोज सिरदर्द की शिकायत रहती है। इन वजहों से उन्हें दर्द निवारक गोलियों का आश्रय लेना पड़ता है।

वाशिंगटन में हुए एक रिसर्च के अनुसार दर्द निवारक गोलियों के अधिक प्रयोग से **गुर्दे व जिगर काम करना बन्द कर सकते हैं** तथा अन्य समस्याएं भी पैदा हो सकती है। डॉ. रोटनर के अनुसार सिरदर्द की शिकायत होना असामान्य नहीं किन्तु इसके निवारण के लिए गोलयां अधिक संख्या में लेने से तकलीफ दूर होने के बजाय बढ़ जाती है कई बार तो इन गोलियों के कारण सिरदर्द होने लगता है। एरिजोना के एक तंत्रिका तंत्र विशेषज्ञ **डॉ. डोडिक ने कहा है** कि सप्ताह में तीन दिन दर्द निवारक गोलियां लेना भी खतरनाक है।

दवा वादियों का भ्रम–यह निश्चित है कि अधकपारी एक कष्टदायक बीमारी है किन्तु जैसा कि दवावादी चिकित्सकों का मत है कि **यह असाध्य रोग है तो यह बात पूर्णतः अमान्य है।** प्रायः हर जीर्ण रोग में दवावादियों की असफलता का कारण यह है कि वे उसका कारण शारीरिक यांत्रिक पगबड़ी या कीटाणुओं के प्रभाव के रूप में खोजना चाहते हैं।

आयुर्वेदीय दृष्टिकोण में–आयुर्वेदीय दृष्टिकोण में यह बात डंके की चोट पर उद्घोषित है कि रोग का नाम जो दिया जाये और जैसी गड़बड़ी आ जाये सभी का एक ही कारण है-**मनुष्य का गलत रहन-सहन और खान-पान से** शरीर को निर्मल करने वाले अंगों में कार्य भार लद जाता है और वे अपना कार्य सही ढंग से करने में असमर्थ हो जाते हैं और शरीर में अवांछनीय तत्व (विकार) इकट्ठे होने लगते हैं। इसके बावजूद भी शरीर अपनी शुद्धि का प्रयास करता है किन्तु हम इसे दवाओं के द्वारा दबाने का प्रयास करते हैं जो जीर्ण रोग के रूप में प्रकट होते हैं।

स्थायी रोग मुक्ति कैसे हो...?–अब इस रोग से हमेशा के लिए कैसे मुक्ति मिले जब इसका विचार शुरु करते हैं तो हमें रोग होने के कारणों पर जाना होगा, ताकि उन्हें दूर किया जाये। आयुर्वेद में संक्षेपत: **क्रिया योगी निदानं परिवर्जनम्।** के अनुसार रोग के कारण को दूर करना ही रोग का स्थायी समाधान माना है तो इस रोग के कारण माधवकार ने इस प्रकार बताये हैं–

रुक्षाशनात्यध्शनप्राग्तावश्यमैथुनै:
वेग संधारणायासव्यायामै: कुपितोऽनिल:।।
केवल: सकफो: गृहीत्वा शिरसाबली।
मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटर्धेऽतिवेदनाम्।।

रुखा (भुना, चटपटा) भोजन, अत्याधिक भोजन, भूख न होने के बावजूद भी भोजन करने **अधिक पुरवाइया वायु,** ओस (आजकल लगातार, कूलर, एयर कंडीशनर) में रहने, अति मैथुन, मल-मूत्र, वमन, आंसू, छींक, भूख, प्यास, पसीना आदि के वेगों को जबरदस्ती रोकने, शक्ति से अधिक परिश्रम, व्यायाम करने (समुचित विश्राम न करने) से शरीर की वायु कुपित होकर अकेले या कफ के साथ मिलकर और बलवान होकर सिर के आधे भाग को जकड़कर मन्या, भौह, शंख, कान, आंख तथा मस्तक के आधे भाग में वेदना पैदा करता है।

इस प्रकार आपने समझ लिया कि गलत रहन-सहन और खान पान से किस प्रकार वायु कुपित होकर रोग को पैदा करती है तो अब हमें इस रोग के हमेशा के लिए छुटकारा पाने के लिए वायु का शमन करना होगा। आपने पूर्व अंकों में पढ़ा होगा कि आयुर्वेद के मतानुसार वायु का प्रमुख स्थान **पक्वाधाने विशेषत:** के अनुसार पक्वाशय (आते) है और वायु को शमन करने के लिए सर्वोत्तम एवे अमोघ चिकित्सा वस्ति कर्म है। सुश्रुत ने **वस्तिर्वाते** कहा है।

वस्ति कर्म के लिए अमलतास के गूदे का एक लीटर क्वाथ तैयार कर 20-25 मिली. एरण्ड तैल मिला निरुह वस्ति देवें। वस्तिकर्म से पूर्व यदि पेट पर गरम ठण्डी सेंक दी जाये, तो पक्वाशय में आकुंचन और प्रसारण क्रिया होगी फिर मिट्टी की पट्टी 30 मिनट तक के लिए रख दी जाये तो पक्वाशय में जमा मल के निष्कासन में सुविधा होगी और वायु विकृति दूर होगी। निरुह वस्तिकर्म लगातार तीन दिन तक भी दिया जा सकता है फिर आगे हर चौथे दिन वस्ति तीन में तीन दिन ली जाये। वस्ति कर्म के पश्चात शौचालय से जल्दी नहीं भागना चाहिए।

त्वचा की सफाई–शरीर की त्वचा को भी सक्रिय रखने की चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि पक्वाशय **कटीसक्थिश्रोत्रास्थिस्पर्श नेन्द्रियम। स्थानं वात्स्य तत्राऽपि पस्वाधानं विशेषत:।** के अनुसार वायु का सम्बन्ध त्वचा से भी रहता है। त्वचा को स्वस्थ रखने के अनेक उपाय हैं। यथा स्नान। पर त्वचा के सभी रोमकूप उन्मुक्त हैं इसके लिए उबटन लगाना चाहिए।

गीली चादर की लपेट या गीली तौलिया से सुबह-शाम पूरे शरीर को रगड़ना चाहिए। पूरे शरीर में मृदा का लेप करके फिर धूप स्नान करने से भी रोमकूप खुल जाते हैं। उपरोक्त में कोई भी एक क्रिया भी एक क्रिया लगातार 2-3 दिन करने से **त्वचा सक्रिय होकर अपना स्वाभाविक कार्य करने लगती हैं।**

अधकपारी होने का एक कारण लगातार ठण्डी हवा, कूलर, ए.सी. में रहना भी है इससे त्वचा को पसीना निकालने का अवसर नहीं मिलता और जो भी थोड़ा बहुत पसीना निकला वह भी त्वचा द्वारा सोखकर रोमकूपों को बन्द कराता रहता है।

जर्मन की **जामा पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार कूलर,** तेज पंखें की हवा, ए.सी. में रहने वालों में 90 प्रतिशत लोग कभी न कभी किसी चर्म रोग से या दमा से प्रभावित होते हैं।

शरीर के वेगों को रोकने का प्रयास न करें–वमन, दस्त, मूत्र, आंसू, पसीना, छींक, प्यास, डकार, गैस आदि का रोकना स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत बुरा है। कभी अपच हुआ या पेट खराब हुआ, तुरन्त दवा खाकर रोक दिया गया, उल्टी के माध्यम से शरीर ने कुछ अवांछनीय तत्वों को बाहर निकालने की चेष्टा की, आपने दवा खाकर तुरन्त रोक दिया, किन्तु यह विकार किसी न किसी रूप से बाहर निकालने का एक सुलभ उपाय भरपूर पानी पीना भी है। इससे शरीर के विजातीय द्रव्य घुलकर निकलने लगते हैं सिर दर्द के रोगी को प्रतिदिन ढाई-तीन लीटर पानी पीना चाहिए।

नस्य लेना–जैसा कि ऊपर बताया गया है कि वायु के कारण ही सिर में जकड़न सी महसूस होती है इसके लिय नस्य सर्वोत्तम उपाय है। कपूर 2 ग्राम+गाय का घी 10 ग्राम अच्छी तरह घोंटकर एक शीशी में भर लें। दिन में

आधुनिक सुविधाओं से युक्त दिल्ली का विशाल

अध्यात्म साधना केन्द्र नेचुरोपैथी सेन्टर

तनाव,मोटापा, कब्ज, गैस, कमर दर्द, दमा, ब्लड प्रेशर, अनिद्रा, शुगर, त्वचा रोग, साइनस, आदि रोगों से छुटकारा पायें

DETOXIFY YOUR BODY WITH NATUROPATHY

शरीर शोधन द्वारा रोगों से बचें **प्राकृतिक चिकित्सा अपनायें**

डॉक्टर परामर्श | मिट्टी पट्टी | मालिश | भाप स्नान | चादर लपेट | रंग चिकित्सा | योग चिकित्सा | षट्कर्म | आहार परामर्श

मुख्य चिकित्सक: डा0 बी0 के0 गुप्ता

मंदिर रोड छत्तरपुर नई दिल्ली-74 सम्पर्क : 9643300652,55,56,58 Tel. : 26802708

Email: askdelhi201@gmail.com www.askpreksha.com

O.P.D./I.P.D.उपचार समय : प्रात 8-1 बजे सांय 3-6 बजे | विद्यार्थियों के लिए इन्टर्नशिप की व्यवस्था

श्री वैध धनवेतरी नमः

मो.: 9871560904
8802421517,9873143421

शिव प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र

डॉ. शिव शंकर गुप्ता 'साधक'

योगाचार्य, डी.एन.वाई.एस, नाड़ी विशेषज्ञ एवं हास्य व्यंग कवि

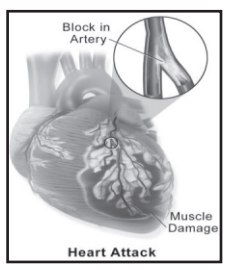

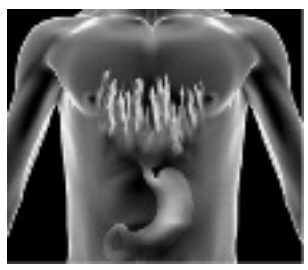

☆कमर दर्द ☆घुटनों का दर्द ☆रीढ़ की हड्डी का दर्द ☆रक्तचाप ☆हृदय रोग
☆मोटापा ☆शाइटिका ☆थाइराइट ☆मूत्रा रोग ☆अल्सर ☆पोस्टेड
☆गैस ☆एसिडिटी ☆कब्ज ☆त्वचा रोग

जी-313, शकूर पुर कालोनी निकट सम्राट सिनेमा, एन.एस.पी., दिल्ली-110034

2-3 बार लेटकर नाक के दोनों नथुनामें डाले और ऊपर की ओर तेज सांस खींचें। इससे बहुत लाभ होता हैं। अन्दर स्नेहन हो जाता है और रुक्षता समाप्त होकर जकड़न दूर होती है शार्ङ्धर ने **नासिका हिशिरोद्वारम** कहा है।

पसीना निकालना–अधकपारी में आराम के लिए एक उपाय पसीना निकालना है जिस समय रोगी अधकपानी से पड़प रहा हो उस समय **कपूर मिश्रित घृत** का पर्याप्त नस्य देकर **गरम पाद स्नान कर स्वेदन देना चाहिए।** गरत पाद स्नान से त्वचा और त्वचा और त्वचा के अन्दर स्वेदग्रन्थियां, गुर्दो की अधिवृक्क ग्रन्थियां होंगी, पसीना निकलेगा और हाईपोथैलेमस अपना सुचारु रूप से कार्य करेगी।

गरमपाद स्नान से पहले ठण्डा पानी पी लेना चाहिए और सिर पर गीला कपड़ा रख लेना चाहिए। बीच-बीच में सिर में ठण्डा पानी डालते रहना चाहिए।

आहार सर्वोत्तम औषधि–ऊपर रोग के कारणों में से आहार व्यवस्था की ओर वरीयता से संकेत किया गया है। रुक्ष भोजन, अतिभोजन और बिना भूख के भोजन करना अधकपारी के मूल कारण वायु प्रकोप का प्रमुख कारण कारण माना गया है। अभी तक हम उपचार की बात कर रहे थे पर प्रमाणित तथ्य यह है कि जब तक व्यक्ति अपना आहार नहीं सुधारेगा तब तक उपचार से अपेक्षित लाभ कभी भी नहीं मिलने वाला। सर्वप्रथम आयुर्वेद रे **'आहार ही औषधि है'** के सिद्धान्त का प्रवर्तन किया, फिर प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसे अपनाया और अब तो एलोपैथ वालों ने रोग और निरोगी होने में आहार की भूमिका स्वीकार की।

भोजन के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक मत है। **मानव रक्त क्षारीय है** हमारे शरीर में क्षार में क्षार और अम्ल का सन्तुलन 80.20 का है। जब तक शरीर में 80 प्रतिशत खारत्व बना रहता है तब तक व्यक्ति स्वस्थ रहता है। किन्तु जब इसमें अम्लत्व की वृद्धि होगी तो एक न एक रोग घेरने लगेंगे। इसलिए स्वस्थ रहने के लिए हमें चाहिए कि हम क्षार प्रधान आहार लें। क्षार प्रधान आहार है **सभी पके फल और हरी तरकारियां, चोकर सहित आटे की रोटी, कन समेच चावल, कच्चा दूध।** किन्तु अनाज के साथ दूध सेवन से यह भी अम्ल हो जाता है। इसके विपरीत अम्लता प्रधान आहार है। चोकर सहित आटा, पॉलिश किया चावल, सफेद चीनी चाय, काफी, कोल्ड ड्रिंक्स, पूड़ी, पराठा, तला भुना भोजन, शराब, मिर्च मसालेदार वस्तुयें। इसलिए इस रोग की चिकित्सा में भोजन व्यवस्था इस प्रकार रखें, प्रातः नाश्ते में एक पाव मौसमी फल, दोपहर व रात को चोकर युक्त आटे की रोटी, एक पाव उबली सब्जी, बहुत ही हल्का नमक।

विश्राम–अब आयी विश्राम की बारी जो कि रोग मुक्ति में आवश्यक है। इसके लिए समयपर सोना, समय पर जागना, क्रोध, तनाव से दूर रहना, मालिश व फलाहार और फलाहार के समय बस इतनी ही क्रियाओं से आप इस रोग से मुक्त हो सकते हैं फिर शायद ही किसी दवा की जरूरत पड़ेगी यदि जरूरत पड़े भी तो केवल **सूतशेखर रस** सादा 250 मिग्रा.+गोदन्ती भस्म 500 मिग्रा. शहद के दिन में 2 बार 10-15 दिन तक ले लें। ■

केन्द्रीय सरकार के स्तर पर

केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्,

आयुष मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित

भारत का पहला

प्राकृतिक चिकित्सालय

सैक्टर-19, रोहिणी जेल के सामने, बाहरी रिंग रोड़, दिल्ली-110085

फोन : 011-65556777

(समय- प्रातः 7.00 बजे से सायंकाल 7.00 बजे तक)

जहाँ पर योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध हैं:-

- प्रशिक्षित चिकित्सकों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग चिकित्सा परामर्श
- जल चिकित्सा, मिट्टी चिकित्सा, मालिश एवं योग चिकितसा आदि की सुविधा
- सामान्य योग कक्षाएँ
- पुरुषों एवं महिलाओं के लिए अलग-अलग उपचार व्यवस्था एवं योग कक्ष
- दो पारियों में उपचार की व्यवस्था
- खुला एवं प्राकृतिक वातावरण
- पहुँचने में आसान
- प्राकृतिक चिकित्सा स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम-एक मास (60 घंटे)
- पूर्ण सुसज्जित बाह्य रोगी विभाग
- 20 शैय्याओं का अन्तः रोगी विभाग
- रोगियों के लिए प्राकृतिक भोजनालय का प्रबंध

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग अपनाएँ : स्वस्थ एवं सुखी रहें

कृपया परामर्श, चिकित्सा एवं बुकिंग के लिए संपर्क करें।

फोन : 011-28520430, 65556777

ईमेल : ccryn.goi@gmail.com; वेबसाइट : www.ccryn.org

योग और भोग

भोग के प्रति मनुष्य का सहज आकर्षण है। भोग का क्षेत्र एवं स्वरूप अति विस्तृत एवं विविधतापूर्ण है। योग के विस्तृत एवं विविधतापूर्ण है। योग के विस्तार तथा विविधता की चर्चा पहले की जा चुकी है। यहाँ योग के साथ भोग के संबंध की चर्चा की जाएगी। सुविधा हेतु भोग का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है-(1) भोगजनित संस्कार एवं संस्कारजनित भोग की दृष्टि से तथा (2) भोग के स्वरूप एवं स्तर के भेद की दृष्टि से।

भारतीय संस्कृति में कर्म-फल का सिद्धांत व्यापक रूप से मान्य है। जैसा कर्म वैसा फल। पूर्व कर्म के कारण ही भोग की सामग्री एवं परिस्थिति दोनों उपलब्ध होती है। साथ ही, उस फल का भोग करते समय भी नए संस्कार उत्पन्न होते जाते हैं जो नए भोगों के पूर्ववर्ती कारण बनते हैं। कर्म-फल के सिद्धान्त की प्रक्रिया में विविधता है, फिर भी मूलतः सहमति है। मन स्वयं योजनाकार, आदतों का वाहक एवं अपना सहज नियामक है। इस प्रकार योग की भोग में दो भूमिकाएँ हो जाती हैं।

सामान्य (संस्कारजनक) भोग में योग की भूमिकाः-

हमारे मन में अनंत सुख पाने की इच्छा है। इसके लिए हम अनंत सामग्री का भोग करना चाहते हैं। योग इस स्तर पर भी भोग का सहायक है, विरोधी नहीं।

योग की दृष्टि विकसित करना एवं उसकी विधियों का लाभ उठाना, दोनों भिन्न बातें हैं। इसे साफ-साफ समझ लेना चाहिए। जैसे योग के अनेक स्वरूप एवं स्तर हैं वैसे ही योग के अभ्यास भी स्थूल एवं सूक्ष्म, कई प्रकार के हैं। विविध अभ्यास, विविध प्रकार से भोग भोगने में सहायक हो सकते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म के अंतर्गसम्बन्धों की अनुकूलता न होने से भोग की योजना या भोग का कार्यान्वयन भोग करने वाले का ही अनिष्ट करता है। इसी प्रकार सूक्ष्म का विरोधी स्थूल योगाभ्यास भी अभ्यासी का अनिष्ट ही करता है।

कल्पनाप्रधान भोग-अनेकों भोगों की इच्छाएँ इस संसार में पूरी नहीं की जा सकती हैं। किन्तु कल्पना की गहन तन्मयता में व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि वह वस्तुतः उसी भोग को भोग रहा है। स्थायी रूप से राज्यपद पाना कठिनतम है किन्तु यह कल्पना करने में और तृप्त होने में उतनी कठिनाई नहीं है कि आज मैं राजा हूँ, राज्य-सुख का भोग कर रहा हूँ।

अति विशिष्टता का यह सुख मनुष्य आंशिक रूप से रंगमंच के अभिनय से लेकर दूसरे की बारात तक में कल्पनापूर्वक भोग लेता है। इसी प्रकार की विधियाँ अनेक हो सकती हैं।

स्वप्नप्रधान भोग-स्वप्न का अनुभव कल्पना के अनुभव से भी अधिक गहरा एवं सुविधाजनक है। भोक्ता को पता नहीं चलता है कि यह सत्य है या नहीं। वह स्वप्न में सत्य ही अनुभव करता है। हमारी अनेक दमित इच्छाएँ स्वप्न में पूरी होती हैं। भोग की कुछ प्रणालियाँ स्वप्न को भी नियंत्रित एवं अनुकूलित करना सिखाती हैं। इससे आप स्वप्न का आनंद अपनी इच्छा के अनुरूप ले सकते हैं।

रेचनामूलक भोग-बहुत सारी इच्छाएँ टूट-फूटकर स्मृतिकोष में अव्यवस्थित हो जाती हैं। वे भीतर में अराजकता के कारण बेचैनी पैदा करती हैं, स्मृति को दूषित करती हैं। इनका स्वभाव है कि ये बहुत सारे स्तर पर संचित नहीं रहतीं हैं। इन्हें कचरा मानकर रेचन की विधियों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। रेचन के समय की सजगता साक्षीभाव में साधक को उसके मन की अराजक स्थिति से परिचित करा देती है। उस समय अहंकार को थोड़ी चोट तो पहुँचती है किन्तु मन हल्का एवं पहले से अधिक व्यवस्थित हो जाता है।

विश्लेषणात्मक भोग एवं ग्रंथि भेद-आधुनिक मनोविज्ञान के विकास के साथ-साथ दमित इच्छाओं के मानसिक ग्रंथियों में परिणत होने की आजकल खूब चर्चा होती है। रेचन के अभ्यास के अगले चरण में या पूर्व भी ऐसी मानसिक उलझनों को स्मृतिपटल से जाग्रत पटल पर लाकर सत्य एवं वास्तविकता के अनुरूप पुनः संयोजित करने की विधियाँ एवं उस समय के भोग इस श्रेणी में आते हैं।

इस अभ्यास से सांसारिक भोगों के प्रति यथार्थवादी दृष्टि बढ़ने से भोक्ता का सामर्थ्य एवं क्षेत्र बढ़ जाता है। भारतीय योग परम्परा की दृष्टि से जन्म के पूर्व से ही, अर्थात् अनेक जन्म की वासनाओं से बनी कई ग्रंथियाँ अभ्यास एवं सामर्थ्य से नियंत्रित एवं संतुलित की जाती हैं। इन ग्रंथियों की संरचना को जानने एवं उन्हें

नियंत्रित करने की साधना भारतीय दृष्टि से ग्रंथि भेद है।

पूर्व स्मृतियाँ–पूर्व जन्म की स्मृतियाँ संस्कार रूप में भीतर में पड़ी रहती हैं। उनमें सत्य-असत्य, पीड़ा-आनंद आदि अनेक प्रकार की सामग्रियाँ रहती हैं। कुछ स्मृतियाँ सचेत अवस्था की तृप्त स्मृतियाँ होती हैं, कुछ अतृप्त एवं अचेनावस्था की होती हैं।

पुरानी स्मृतियों को मन की गहराई से पूरी तरह निकाल बाहर करने की साधना विश्लेषण-प्रधान योगधारा में की जाती है। अतीत की ये स्मृतियाँ धीरे-धीरे ध्यानभूमि में अवतरित होती जाती हैं। साधक को यह सजीव सा लगता रहता है किन्तु यह बोध रहता है कि ये केवल स्मृतियाँ हैं।

इस क्रम में स्मृतियाँ अपनी सम्पूर्णता में अवतरित होती हैं। यह क्रम तब तक चलाया जाता है जब तक साधक को अपने कई पूर्व जन्मों का स्मरण न हो जाए। जन्म के स्मरण के साथ मृत्यु का स्मरण होना भी सहज है। इस प्रक्रिया में सुख एवं दुख का गहरा भोग होता है।

बिंबों का रूपांतरण–तंत्र एवं योग की रूपातंरण-प्रधान (वाशिष्ठ धारा) में सम्पूर्ण सामग्री को रूपांतरित करने की व्यवस्था है। अत: स्मृतिबिंबों को विश्लेषित करने की जगह रूपांतरित कर दिया जाता है। इससे भोगने में अनुकूलता आ जाती है।

ऊर्जा का रूपांतरण–सामान्य व्यक्ति मन एवं उसकी कार्यप्रणाली को जिस रूप में समझता है, वह वैसा ही नहीं है। योगी के लिए प्रेम और घृणा की ऊर्जा एक है। रुदन एवं हास्य मूलत: एक हैं। वह अपने रुदन को हास्य में परिवर्तित करना तो जानता ही है, दूसरे को भी इस अनुभूति तक ले जा सकता है। रुदन को हास्य के रूप में कौन नहीं भोगना चाहेगा? घृणा प्रेम में रूपांतरित हो जाए तो इससे और अच्छा क्या होगा? योग की साधना में समर्थ गुरु के लिए यह सब चुटकुला सुनाने के समान है।

शक्तिशाली अदम्य इच्छाओं का चेतनापूर्वक भोग–कुछ इच्छाएँ इतनी प्रबल होती हैं कि उन्हें आंशिक या प्रतीकात्मक रूप में भोगना मन को मंजूर नहीं होता है। मन की गहरी परतों से लेकर जागृत स्मृति तक उनका फैलाव होता है। विश्लेषण, रूपांतरण या रेचन करने की तुलना में ऐसी इच्छाओं का भोग कर लेना ही कभी-कभी सुविधा की दृष्टि से भी आसान होता है। ऐसी स्थिति में अदम्य इच्छाओं का सीधे-सीधे भोग कर लेना भी योग परम्परा को मान्य है। कभी-कभी अपनी आवश्यकता न होने पर भी संसार के कल्याण के लिए योगी लोग भोग भोगने के लिए तैयार हो जाते हैं। बौद्ध परम्पराओं में ऐसे महानुभावों को बोधिसत्त्व कहा जाता है। उनकी करुणा की इच्छा ही उन्हें बार-बार जन्म लेने को विवश करती है। भक्तिमार्गी संत भी पुन: जन्म लेने या संसार के सुख-दुख को भोगने से भागते नहीं हैं। कर्मयोगी भी इसी कोटि में आते हैं।

उक्त भोगों के लिए तन-मन को सक्षम-सुदृढ़ बनाना–उपर्युक्त सभी प्रकार के भोगों को भोगने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा तन एवं मन सक्षम और सुदृढ़ हो, हमारी शारीरिक तथा मानसिक कार्यप्रणालियाँ ठीक ढंग से काम कर सकें। सुस्वादु भोजन का भोग पाचनतंत्र के ठीक रहे बिना कैसे हो सकता है? मन-मस्तिष्क स्वस्थ ही नहीं रहें, आयु लम्बी न रहे तो भोगों को भोग कैसे जाए, चाहे वे भोग किसी प्रकार के क्यों न हों?

इस प्रकार मानव व्यक्तित्व को सभी स्तरों पर सुदृढ़ करने का उपाय योग साधना में सिखाया जाता है। आसन-प्राणायाम से धारणा-एकाग्रता तक की विधियाँ इसी रूप में व्यक्तित्व को दृढ़ करती है।

संस्कार निर्माण:–

इतना होने के बाद भी यह स्पष्ट समझना चाहिए कि ये विधियाँ भोग में भले ही सहायक हों, भोगजनित संस्कार का क्षय नहीं करतीं। अत: इन विधियों का लाभ या हानि स्वर्ग या नरक की अंतिम सीमा तक सीमित है। स्वर्ग एवं नरक भी सुख एवं दुख से युक्त हैं। संस्कारों का क्षय करने की विधियाँ अलग हैं। इनकी चर्चा आगे होगी।

संस्कारोच्छेदक भोग में योग की भूमिका

किसी भी कर्म को करने का फल होता है। उस फल को भोगना जरूरी है। यह लगभग सर्वमान्य होने पर भी इस विषय पर काफी मतांतर है कि कर्म-फल की प्रक्रिया किस प्रकार चलती है। इस प्रक्रिया की व्याख्या विविध परम्पराओं में भिन्न-भिन्न रूप में की गई है। एक जन्म के कर्म का फल दूसरे जन्म में तो होता ही है, इस जन्म में भी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। भारतीय संस्कृति चूंकि निर्वाण और मोक्ष, दोनों को मानती है, इसीलिए निर्वाण, मोक्ष या इसके समतुल्य अवस्था तक पहुंचने के लिए अनेक प्रकार के उपाय विकसित हुए हैं। इन उपायों में यह अंतर्निहित अवस्था है कि पूर्व में किए हुए कर्मों के फल को तो किसी न किसी रूप में भोगा जाय लेकिन एक ऐसी अवस्था भी हो जिसमें कर्म के फल के भोग की ऐसी प्रक्रिया हो जिससे आगे के लिए कर्मजनित संस्कार शेष नहीं

रहें। इस दृष्टि से कर्म-फल का भोग दो प्रकार का हुआ।

1. कर्म-फल का वैसा भोग जो संस्कार को पैदा करने वाला और कर्म एवं फल की प्रक्रिया को बढ़ाने वाला हो।

2. कर्म के फल का वैसा भोग जो पुराने कर्मों के फल के रूप में भो के लिए उपलब्ध है किंतु आगे वह इसी प्रकार से संस्कार या वासना को उत्पन्न करने वाला नहीं होता है जो किसी व्यक्ति को भावी फल के भो के लिए विवश कर सके।

कर्म के फल को किसी एक प्रकार से भोगना अत्यंत कठिन और दुखदायी हो सकता है। किंतु उसी फल को दूसरे से भोगना आनंददायी भी हो जाता है। योग इन्हीं उपायों की कुशलता का नाम है।

जैन परंपरा में उपायकौशल्य को उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है जितना महायान-बज्रयान की बौद्ध परंपरा या वैदिक परंपरा में। गीता में श्रीकृष्ण इसीलिए योग को 'कर्मों में कुशलता' मानते हैं। महायान परंपरा भी उपायकौशल्य की परंपरा है। जो कार्य कर्तव्य की दृष्टि से प्रतिकूल या भारी लगता है, वही खेल की दृष्टि से अनुकूल हो जाता है। 'सद्धर्मपुंडरीक' इसे बहुत महत्त्व देता है। यह 'उपाय-कौशल्य' का एक उदाहरण है।

संस्कार क्षय करने वाले भोग एवं योग

जैसे इंधन की तुलना में आग की मात्रा अधिक हो और इंधन परिष्कृत हो तो कालिख नहीं, केवल राख बचती है जो आसानी से पार्थिव रूप में बदल जाती है। उसी प्रकार सही ढंग से यदि भोग की इच्छाओं का उनकी प्रकृति के अनुरूप भोग सामग्री एवं भोग प्रक्रिया के साथ समायोजन किया जाय तो उस भोग में अगली भोगेच्छा नहीं उदित होती।

सामान्य उदाहरण में भी ध्यान से देखने पर पता चलता है कि भोग की स्मृतियाँ तृप्ति, संतोष, उपेक्षा, लालच, अरुचि या विद्वेष, किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। इनमें से तृप्ति, संतोष एवं उपेक्षा अगले भो गके लिए संस्कार या वासना का निर्माण नहीं करते। किंतु भोग का अनुभव यदि उपर्युक्त अनुभवों से युक्त है तो पुनः-पुनः भोग की प्रवृत्ति बढ़ती है। अधूरा भोग अधिक उद्वेग पैदा करता है।

इसलिए संस्कार का क्षय कराने वाले भोगों की प्रणाली ऐसी बनाई जाती है जिसमें पूर्णतः तृप्ति, संतोष एवं अंततः तटस्थता का विकास हो। बौद्ध अभिधर्म शास्त्रों में इसकी विस्तृत प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

स्तर भेद से भोग

आम आदमी मानव चेतना के विविध स्तरों की बनावट एवं रहस्यों का जानकार नहीं होता अतः उसे अनेक बातें चमत्कारपूर्ण या रहस्यमय लग सकती हैं। किंतु यह एक सरल सी बात है कि यदि मन में इच्छा या संकल्प के सूक्ष्म धरातल पर ही भोग की प्रक्रिया पूरी हो जाय तो यह आवश्यक नहीं है कि स्थूल भौतिक स्तर पर भी उस क्रिया की पुनरावृत्ति करनी पड़े। अतृप्त इच्छाओं के समायोजन का सिलसिला प्राकृतिक रूप से स्वतः सदैव चलता रहता है। योग की साधना में इस सिलसिले की कार्यप्रणाली से अभ्यासी को पूर्णतः परिचित कराकर उसपर नियंत्रण की विधि स्तरों पर सिखाई जाती है। जैसे–

क. शरीर के स्तर पर तृप्तिपूर्वक भोग।

ख. स्वप्न के स्तर पर भोग एवं स्वयं इस कार्य प्रणाली को जानकर उसे निरुद्ध कर देना।

ग. अवचेतन से कचरे को निकालकर उसे बार-बार साफ करने की विधि जानना ताकि संस्कार न बने।

घ. इच्छा एवं संकल्प के भेद को जानकर इच्छा को इच्छा के स्तर पर ही भोगने, रूपांतरित करने या बाहर निकालकर बाह्यालंबन की अनिवार्यता से बचना एवं संस्कारों का क्षय करना।

ड. अंततः मन की संपूर्ण कार्यप्रणाली को ठीक से जानकर अपने मन का स्वयं मालिक बन जाना। परिणामतः जीवन-मृत्यु, रुचि-अरुचि, सुख-दुःख, सबको चुनने, छोड़ने या रूपांतरित करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेना।

अधिसंख्यक लोगों की रुचि भोग में है, चाहे उससे संस्कार बने या न बने। मोक्ष एवं स्वर्ग में से एक चुनने की बारी आए तो स्वर्ग को चाहने वाले अधिक होंगे। अतः संस्कार के क्षय की प्रक्रिया का वर्णन केवल सूत्र रूप में ही किया गया है।

पहले आप अपने आप से पूछें कि आप स्वर्ग चाहते हैं या मोक्ष। योग के द्वारा दोनों संभव है। तब आप ठीक से विधियों को चुन सकेंगे, अन्यथा दमित इच्छाओं के चंगुल से आप निकल नहीं सकेंगे और झूठे ही योग साधना या अपने गुरु को दोषी ठहराते रहेंगे। भोग का सामर्थ्य एवं भोग से मुक्ति का सामर्थ्य मौलिक रूप से भिन्न है, चाहे वह क्रमिक विश्लेषणात्मक प्रक्रिया में धीरे-धीरे प्राप्त किया जाय या मन को रूपांतरित करने की विविध विधियों के ज्ञान के उपरांत अचानक मन के बंधन से मुक्ति की प्रक्रिया द्वारा ही क्यों न प्राप्त हो। इस विषय पर मिश्रित दृष्टि या मिश्रित अभ्यास के केवल भ्रम ही पैदा होगा। ■

बूढ़े माता-पिता से उनके अधिकार मत छीनिए

प्राय: सभी माता-पिता बच्चों के लिए हर प्रकार के समझौते करने को तैयार रहते हैं फिर उनके बुढ़ापे में बच्चे क्यों नहीं कोई समझौता करने का प्रयास करते? कुछ लोग अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा तो नहीं कर पाते, लेकिन उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक तंगी नहीं होने देते।

ऐसे लोग उन लोगों से बेहतर हैं, जिनके माता-पिता दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं, लेकिन माता-पिता की सेवा करना भी तो बच्चों का ही फर्ज है। हम सब अपने फर्ज से कैसे मुँह मोड़ सकते हैं?

आज के आधुनिक शिक्षा प्राप्त तथा पाश्चात्य संस्कृति के पुजारी वैसे तो अपने बूढ़े माता-पिता को कभी पूछते नहीं, लेकिन 'मदर्स डे' और 'फादर्स डे' पर उपहार भिजवाना नहीं भूलते। बूढ़े माता-पिता को महंगे उपहार नहीं, देखभाल और प्यार की ज्यादा जरूरत है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्हें देखभाल की कोई खास जरूरत नहीं है। वास्तव में उन्हें जरूरत है अपने बच्चों के साथ की, बहू और पोते-पोतियों के साथ की। यदि उनकी बहू और पोते-पोतियाँ साथ होंगे तो उन्हें देखभाल की भी कोई जरूरत नहीं होगी, अपितु वे ही उनके कामों में हाथ बँटा देंगे। परिवार का अभाव ही तो उनके दु:ख और बीमारी का कारण है।

एकल परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों में रहने वाले माता-पिता और बच्चे सभी अधिक स्वस्थ रहते हैं। साथ रहना सुरक्षा ही नहीं, अच्छे स्वास्थ्य का मूल है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो माता-पिता के साथ तो रहते हैं और उनका पर्याप्त आदर-सम्मान भी करते हैं, उनके पैर छूते हैं, लेकिन अपने बच्चों को उनके पास तक फटकने नहीं देते। मात्र दिखावे के लिए आदर-सम्मान भी पर्याप्त नहीं, अपितु पूर्णरूप से अपनेपन की जरूरत है।

दादा-दादी अपने पोते-पोतियों के साथ घुल-मिल कर रहें तभी उन्हें अच्छा लगेगा। दोनों एक-दूसरे से साहचर्य से परस्पर लाभान्वित भी हो सकेंगे। यदि सचमुच अपने बूढ़े माता-पिता को स्वस्थ रखना है, उनकी सेवा करनी है तो उनसे उनके पोते-पोतियों का संसार मत छीनिए। ■

सहारा इन्सिटट्यूट ऑफ मेडिकल सायन्स एण्ड मैनेजमेंट

(B.S., N.D.A.P. COUNCIL of E.D.P.)

Affilitated by : AKHIL BHARTIYA PRAKRITIK CHIKITSA PARISHAD, (Rajghat Colony, New Delhi)
SIMSM Auth. Centre B.G.M. Pbn. with Collaboration, Auth. by UGC, Ministry HRD, DEC, AICTE, Recog. HRD Education Council, AN Council Member of Under the Autonomous

अन्य कोर्सेस

- डी.एन.वाई.एस. (नैचुरोपैथी योगा) (3 साल 6 महीने) (राजघाट कालोनी, दिल्ली)
- ए.एन.एम. (नर्सिंग)
- एम.डी. (हर्बल मेडिसिन)
- एम.डी. (नेचुरोपैथी मेडिसिन)
- पी.डी.ई.एम.एम. (इमरजेन्सी मेडिसिन)
- डी.ओ.टी. (ऑप्थो)
- होटल मैनेजमेंट
- फायर सेफ्टी इंजीनियर
- डी.ए.एम.एस. (आयुर्वेद)
- डी.एम.एल.टी. (पैथो)
- डी.पी.टी. (फिजियो)
- सी.डी. (डायबोटोलॉजिस्ट)
- सी.सी.एच. (चाईल्ड हेल्थ)
- सी.जी.ओ. (आयनोकोलॉजी)
- डी.पी.एच. (होमियोपैथी फार्मेसी)
- कम्प्यूटर इंजीनियर
- ऑफिस मैनेजमेंट
- डी.यू.एम.एस. (यूनानी)
- डी.यू.पी. (यूनानी फार्मेसी)
- डी.ए.पी. (आयुर्वेद फार्मेसी)
- टैक्नीकल
- आय.टी.आय.
- कम्प्यूटर इंजीनियर
- जर्नलिज्म
- ब्यूटी फैशन स्कूल

उपरोक्त कोर्स के लिए एडमिशन चालू है

हेड ऑफिस : नूर हॉस्पिटल, बी.एम. पूरा, औरंगाबाद, ब्रांच ऑफिस : बागवान कॉलोनी, अम्बेडकर रोड़, कल्याण (पश्चिम), मुम्बई
मोबाईल : 09923328801, 09923744288, ईमेल : simsmabd@gmail.com

(M) 9871413214

आभा प्राकृतिक चिकित्सालय

(प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र)

1/5898, कबूल नगर, शाहदरा, दिल्ली–32 (लोनी रोड़, तिकोना पार्क के पीछे

आपकी समस्या का समाधान

आज की भागगमभाग दौड़ व प्रदूषित वातावरण में किसी भी व्यक्ति का स्वस्थ रहना मुश्किल ही नहीं असंम्भव भी है। अगर आप किसी कारणवश भी अस्वस्थ हैं और स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हैं, तो आपका 'आभा प्राकृतिक चिकित्सालय' में स्वागत है आप स्वयं प्राकृतिक चिकित्सक बनकर हजारों रुपये, टेस्ट, डाक्टरों की भारी फीस और दवाओं का खर्च बचा सकते हैं। आप अपना व अपनों का स्वास्थ्य लाभ करा सकते हैं।

उपरोक्त चिकित्सालय गत कई वर्षों से पूर्वी दिल्ली में कार्यरत हैं। केन्द्र में सभी प्राकृतिक चिकित्सा के साधन उपलब्ध हैं।

"अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद्" नई दिल्ली द्वारा संचालित परीक्षाओं का भी यह केन्द्र है।

परीक्षाओं के अलावा यहाँ विभिन्न रोग जैसे कि–स्लिप डिस्क, कमरदर्द, सरवाईकल, साईटिका व कब्ज, नाभि टलना आदि का उपचार किया जाता है।

अन्य आकर्षणः–

★ छः माह का व्यवहारिक ज्ञान (Intership) करने का केन्द्र है।

★ एक्युप्रेशर, सु–जोक, चुम्बक चिकित्सा व रंग चिकित्सा

★ स्वयं रोजगार प्राप्त करने के अवसर प्रदान करता है।

पाठ्यक्रम :–

कृपया फोन पर समय लेकर आएं

निम्न पाठ्यक्रम करवाये जाते हैं :–

(अ) दसवीं पास 'प्रवेश' व 'उपचारक' की परीक्षा में बैठें।

(ब) बारहवीं पास प्राकृतिक चकित्सक (डी.एन.वाइ.एस.) की परीक्षा में बैठें।

नोटः– फीस में पुस्तकें, पढ़ाई, नोट्स परीक्षा, मार्कशीट व मैगजीन फीस सभी सम्मिलित है।

समय प्रातः 10 से सायं 5 बजे तक

ADMISSION OPEN

हम आपके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हैं।

मांसाहार या शाकाहार फैसला आपका

1. प्रकृति द्वारा जो मनुष्य की रचना की गई है, उससे सिद्ध होता है कि मनुष्य शाकाहारी है।
2. शाकाहारी जीवों की आंतें लम्बी होती हैं और मांसाहारी की आंतें छोटी होती हैं।
3. शाकाहारी जीव खींच कर पानी पीते हैं, मांसाहारी चाट-चाट कर पानी पीते हैं।
4. शाकाहारी जीवों के दांत चपटे होते हैं ताकि वह खुराक को पीस सकें।
5. मांसाहारी जीवों के दांत नुकीले होते हैं और नाखून तेज होते हैं ताकि वह मांस को चीर सकें।
6. शाकाहारी जीव गहरी निद्रा लेते हैं, मांसाहारी गहरी निद्रा नहीं लेते।
7. शाकाहारी की किडनी छोटी होती है, मांसाहारी की बड़ी होती है।
8. इन तथ्यों से सिद्ध ही गया कि प्रकृति ने प्राणी को शाकाहारी बनाया है न कि मांसाहारी।
9. रोगों के बचाव के लिए आहार की शुद्धता तथा शाकाहारी कितना उपयोगी है इसके प्रमाण आपको दे रहे हैं।
10. आधुनिक शोककर्ताओं ने और वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि शाकाहार भोजन और हरी सब्जियाँ, फल स्वास्थ्य के लिए कितने गुणकारी हैं। इसमें उच्च कोटि के प्रोटीन प्राप्त होते हैं, पोषक तत्व प्रोटीन, विटामिन, कैलोरी, खनिज भी प्राप्त होते हैं।
11. संतुलित शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यवर्धक है जबकि मांसाहार कई रोगों को जन्म देता है।
12. इसके अधिक प्रयोग से कब्ज पैदा होती है जो रोगी की जननी है।

■ **डॉ. बी.एस. वेदी**

विश्व स्वास्थ्य की रिपोर्ट

सन् 1981 में विश्व के विख्यात डॉक्टरों ने रिपोर्ट दी है कि मांसाहार से क्रॉनिक रोग पैदा होते हैं। इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मांसाहार से हानियाँ:-

सात्विकता का अगर कीड़े शत्रु हैं तो मांसाहार है। इसकी बढ़ती हुई प्रवृत्ति से दिन प्रतिदिन पशुधन समाप्त ही रहा है। जिसके बिना वायुमण्डल दूषित ही रहा है। प्रकृति का संतुलन रखने के लिए जितना महत्व मनुष्य का है उतना ही महत्व पशुओं का है। भारतीय कृषि को जितनी ऊर्जा चाहिए उसकी आधी पशुओं से मिल जाती है।

इससे सिद्ध हो गया कि पेड़-पौधे और पशु हमारे रक्षक हैं। ■

जीवन से निराश रोगियों के लिए

प्राकृतिक चिकित्सा आश्रम एवं योग केन्द्र

करनाल रोड, नहरपुल, शामली-247776

जिला-शामली (उत्तर प्रदेश)

फोन नं॰ - 01398-250145, मो॰-9412887650

यह केन्द्र दिल्ली से बागपत-बड़ौत रोड पर 80 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। प्राकृतिक वातावरण में एक मात्रा प्रवेशित चिकित्सालय में 50 रोगियों के निवास आदि की समुचित व्यवस्था है।

चिकित्सालय के निकट नहर का बहता हुआ पानी रोगियों के लिए आर्कषण का केन्द्र है, और चिकित्सालय के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे मन को हर्षित करते हैं।

रोग से मुक्त होने तथा उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए एक बार चिकित्सालय में अवश्य पधारें।

डा॰ रामदत्त शर्मा

मुख्य चिकित्सक

क्या हम स्वस्थ रहना चाहते हैं?

मानव जीवन अमूल्य

मानव जीवन अमूल्य है। वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग एवं उसकी सुरक्षा उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है। हमें चिन्तन करना होगा कि मानव जीवन के रूप में प्राप्त हम अपनी ऐसी अमूल्य क्षमताओं का अप्राथमिक, अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग और अपव्यय तो नहीं कर रहे हैं? जब तक अपनी क्षमताओं का सही उपयोग नहीं होगा, दुख और रोग के कारणों को नहीं समझा जायेगा, तब तक हमारा जीवन अमर्यादित, अनियन्त्रित, लक्ष्य-हीन, स्वच्छन्द, असंयमित होने से स्थायी स्वास्थ्य एवं समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वास्थ्य का महत्त्व

स्वस्थ जीवन मानव की सर्वोच्य आवश्यकता है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना मानव न तो शान्त, सुखी, आनन्दित जीवन-यापन कर सकता है और न ही अपने लक्ष्यों की पूर्ति आसानी से कर सकता है। अस्वस्थ शरीर सुखी जीवन को दु:खी बना सकता है, इसी कारण तो कहावत प्रचलित है-"पहला सुख नीरोगी काया।" स्वास्थ्य जो तन, मन और आत्मा के एक सन्तुलित, अनुशासित, समन्वय का प्रतीक है, कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे बाजार से खरीदा जा सके अथवा उधार लिया जा सके या चुराया जा सके। ये सारी बातें जानते, मानते और समझते हुए भी आज का मानव कितना स्वस्थ एवं सुखी है, प्राय: किसी से अज्ञात नहीं है। प्रत्येक मानव दीर्घायु बन आजीवन स्वस्थ रहना चाहता है। यदि हमें स्वस्थ रहना है तो रोग पैदा करने वाले कारणों से अपने को दूर रखना होगा।

सुखी जीवन के लिए स्वयं की क्षमताओं का सदुपयोग आवश्यक

प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त स्वस्थ एवं सुखी रहना चाहता है। स्वस्थ रहना आत्मा का स्वभाव है। कोई भी रोगी बनना नहीं चाहता। परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य, शान्ति और समाधि नहीं मिल सकती।

सुखी जीवन के लिए सिर्फ शरीर का होना ही काफी नहीं होता, अपितु शरीर का स्वस्थ, निरोगी और ऊर्जायुक्त होना भी आवश्यक है। अनेक व्यक्ति बाह्य रूप से बलिष्ठ, पहलवान जैसे दिखने के बावजूद कभी-कभी असाध्य रोगों से पीड़ित पाए जाते हैं, जबकि इसके विपरीत कभी-कभी बाह्य दृष्टि से दुबले-पतले दिखने वाले कुछ व्यक्ति मोटे-ताजे दिखने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा मनोबली, आत्मबली और स्वस्थ हो सकते हैं। अत: स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को अपनी जीवनचर्या का निर्वाह करते समय अपनी क्षमताओं का सजगता, स्वविवेक, संयम और संतुलन के साथ सम्यक् पालन करना चाहिए।

स्वस्थ रहने के लिए यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ क्या है? स्वस्थ कौन होता है? रोग क्या है? रोग क्यों, कब और किसे होता है? हमें उन सभी कारणों को जानना और समझना आवश्यक है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमारा स्वास्थ्य बिगाड़ने में सहायक बनते हैं। हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता घटाते हैं। शरीर, मन और आत्मा के विकारों को बढ़ाते हैं। उनका आपसी सन्तुलन बिगाड़ते हैं। स्वस्थ रहना भी एक कला है, एक विज्ञान है, एक दृष्टि, सोच अथवा चिन्तन का प्रतिफल है जिसके लिए विवेकपूर्ण उचित ज्ञान, साधन और सम्यक् पुरुषार्थ अनिवार्य है। प्राप्त क्षमताओं का अधिकाधिक प्राथमिकता के आधार पर उपयोग कर तथा स्वास्थ्य को प्रभावितत करने वाले विकारों से अपने आपको बचाकर ही हम स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। एक तरफ तो हम चिकित्सा करें और दूसरी तरफ असंयम में रहें, इन्द्रियों में आसक्त बने रहें, तो स्वास्थ्य कैसे प्राप्त होगा? जीवन के साथ मृत्यु निश्चित है। जन्म के साथ आयुष्य के रूप में श्वास यानी प्राण ऊर्जा का जो खजाना लेकर हम जन्म लेते हैं, वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। जीवन के अंतिम क्षणों तक प्राण ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित, नियन्त्रित एवं सही संचाति करके तथा उसका सही उपयोग करके ही हम शान्त, सुखी और स्वस्थ जीवन जी सकते हैं।

स्वास्थ्य की उपयोगिता का आभास रोगावस्था में

किसी वस्तु का मूल्य उसका अभाव होने पर ही पता चलता है। वस्तु का मूल्य समझे बिना उसका सदुपयोग बराबर नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार स्वस्थ शरीर को महत्त्व का पता भी स्वास्थ्य के नष्ट हो जाने अथवा वृद्धावस्था आ जाने पर ही लगता है। संसार के सभी दु:खों का कारण अज्ञान है। इसी प्रकार सभी रोगों का कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पूर्ण और सही ज्ञान न होना तथा उनका उल्लंघन करना है। प्रकृति किसी भी ज्ञानी अथवा अज्ञानी की गलती को कभी क्षमा नहीं करती। प्राय: वृद्धावस्था में तो स्वास्थ्य का महत्त्व प्रत्येक मानव को अनुभव होता ही है क्योंकि, जवानी कभी लौट कर नहीं आती और बुढ़ापा कभी लौट कर नहीं जाता।

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है?

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? खाना-पीना, मौज-शौक करना, सो जाना और दूसरे दिन प्रात: उठकर पुन: उन्हीं कार्यों में लग जाना। यह सभी कार्य तो पशु भी करते हैं। ऐसे जीवन जीने वाले मनुष्य और पशु में क्या अन्तर? मानव

में चेतना का सर्वाधिक विकास होने के कारण एक विशेषत होती है कि वह जानता भी है कि समझता भी है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है?कया करना चाहिए और क्या करना नहीं चाहिए? मानव में ही चिन्तन, मनन की अपूर्व क्षमता, बुद्धि तथा विवेक होता है। जिससे भूतकाल की भूलों का सुधार और भविष्य के सुखद जीवन की कल्पना एवं सम्यक् पुरुषार्थ कर सकता है। अत: मानव से ही अपनी क्षमताओं के अनुरूप सही उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति आगे बढ़ने की अपेक्षा रखी जा सकती है।

जीवन में स्वास्थ्य को प्राथमिकता क्यों आवश्यक?

मानव के सारे क्रियाकलाप शरीर के आश्रित होते हैं तथा शरीर के अस्तित्व में आने पर ही प्रारम्भ होते हैं और उसके निष्प्राण होते ही समाप्त हो जाते हैं। तभी तो उपनिषदों में कहा गया- "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।" मानव की जीवन यात्रा इस शरीर रूपी वाहन द्वारा ही सम्पन्न होती है। यदि वह वाहन अच्छा और शक्तिशाली होगा तथा जीवन यात्रा के दौरान इसकी उचित देखभाल की जाती रहेगी एवं क्षमता से ज्यादा भार डाल कर इसका दुरुपयोग नहीं किया जाएगा तो यह अपनी यात्रा निश्चित अवधि तक निर्विघ्न रूप से पूर्ण करेगा और इसमें यात्रा करने वाला मानव अधिक सुखद व लम्बी यात्रा कर सकेगा, अन्यथा एक खटारा गाड़ी में बैठकर दु:खद व बाधापूर्ण यात्रा करनी पड़ेगी और बीच राह में ही गाड़ी के खराब हो जाने से आगे की यात्रा के लिए असमय ही नया शरीर रूपी वाहन खोजना पड़ जाएगा।

स्वास्थ्य हेतु प्राकृतिक नियमों का पालन अनिवार्य

एक साधारण से यंत्र वाहन अथवा कम्प्यूटर जैसे उपकरण से भी उचित व निर्विघ्न सेवा प्राप्त करने के लिए एक आवश्यक है कि उसके निर्माता द्वारा बतलाई हुई संचालन नियमावली के अनुसार ही उसे चलाया जाए। नियमित उचित सफाई द्वारा उसे खराब होने से बचाया जाये तथा उसमें वे ही तल पदार्थ डाले जाएँ जो उपकरण की कार्य क्षमता में अवरोधक न बनउसे सुचारू रूप से चलाने में सहायक हों। तब क्या इस दुनिया की सर्वोत्तम मानव रूपी मशीन से पूर्णकाल तक निर्विघ्न सेवा प्राप्त करने के लिए, इसकी नियमानुसार देखभाल करना आवश्यक नहीं है, ऐसा कैसे संभव हो सकता है? जैस नियमित सर्विस, उत्तम श्रेणी का तेल व जल उचित मात्रा में प्रयोग करने व उसकी ट्यूनिंग भंग नहीं होने देने से कोई भी वाहन उत्तम सेवा देता है, वैसे ही उचित आहार-विहार, आचार-विचार, रहन-सहन एवं प्रकृति के साथ तालमेल रखने से यह शरीर भी स्वस्थ रहता है तथा अपनी पूर्ण अवधि तक निर्विघ्न सेवा प्रदान करता है। अत: शरीर की गर्भकाल से ही उचित देखभाल करनी चाहिए।

स्वास्थ्य के प्रति स्वयं की सजगता आवश्यक

शरीर, मन और आत्मा के बारे में अधिकांश व्यक्तियों को जानने, सोचने, समझने की जिज्ञासा ही नहीं होती। स्वास्थ्य के बारे में हमारी सोच पूर्णतया सही नहीं होती। क्या गलत? क्या सही? क्या उचित? क्या अनुचित? क्या प्राथमिक, अति आवश्यक? क्या साधारण, क्या करणीय?क्या अकरणीय? प्रत्येक तथ्य का कारण एवं मूल क्या? क्यों? कब? कितना जानने का प्रयास करें? समस्या अथवा रोग का पता लग जाएगा। शरीर क्या स्वीकार करता है और क्या नहीं, समझ में आ जाएगा।

अधिकांश रोग प्राय: स्वयं की गलतियों, उपेक्षावृत्ति से उत्पन्न होते हैं। अत: उपचार में स्वयं की सजगता और सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक है। जब तक रोगी रोग के कारणों से नही बचेगा। उसकी गम्भीरता को नहीं स्वीकारेगा तब तक पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकेगा? रोग प्रकट होने से पूर्व अनेक बार अलग-अलग ढंग से चेतावनी देता है। परन्तु रोगी उस तरफ ध्यान ही नहीं देता। इसी कारण उपचार एवं परहेज के बावजूद चिकित्सा लम्बी, अस्थायी दुष्प्रभावों वाली हो तो भी आश्चर्य नहीं? अत: रोग होने की स्थिति में रोगी को स्वयं से पूछना चाहिये कि उसको रोग क्यों हुआ? रोग कैसे हुआ? कब ध्यान में आया? रोग से उसकी विभिन्न, शारीरिक प्रक्रियाओं तथा स्वभाव में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? इस बात की जितनी सूक्ष्म जानकारी रोगी को हो सकती है, उतनी अन्य को नहीं।

स्वस्थ रहना स्वयं के हाथ

क्या स्वयं के अज्ञान, अविवेक, असजगता के कारण तथा हमारी असंयमित, असंतुलित और अप्राकृतिक जीवन शैली से तो रोग पैदा नहीं होते हैं? उनकी अपेक्षा कर दीर्घकाल तक पूर्ण स्वस्थ रहने की हमारी कल्पना, क्या आग लगाकर ठण्डक प्राप्त करने जैसे मूर्खतापूर्ण तो नहीं हैं? क्या हमारी प्यास किसी अन्य व्यक्ति के पानी पीने से शान्त हो सकती है? क्या हमारा दर्द, पीड़ा, वेदना हमारे परिजन ले सकते हैं? प्राय: रोग के प्रमुख कारण रोगी की स्वयं की असावधानी से पैदा होते हैं। अपनी स्थिति से जितना हम स्वयं परिचित होते हैं, दूसरा उतना परिचित हो नहीं सकता। यंत्र और रासायनिक परीक्षण तो मात्र शरीर में होने वाले भौतिक परिवर्तनों को बतलाने में तनिक सहायकता कर सकते है। आसपास का प्रदूषित वातावरण, पर्यावरण, अशुद्ध भोजन सामग्री, अशुद्ध पानी और प्रदूषित वायु रोगों का कारण हो सकते हैं। परन्तु शरीर की प्रतिरोधक क्षमता ठीक हो तो बाह्य कारण अकेले व्यक्ति को रोगग्रस्त नहीं बना सकते। जब रोग व्यक्ति के स्वयं की गलतियों से ज्यादातर पैदा होता है तो स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा रोग होने पर उसके उपचार में रोगी की सजगता, भागीदारी, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् पुरुषार्थ का सर्वाधिक महत्त्व होता है। ■

दूरभाष : 9918618820, मो० : 9919011121

SHRI SATHYA SAI INSTITUTE OF YOGA AND NATUROPATHY

(संचालक : मानव कल्याण संस्थान, नारायणपुर)

नारायनपुर, जनपद, मीरजापुर (उ०प्र०)

अगर आप अपने रोग से हताश एवं निराश हो चुके हों तो संपर्क करें। लकवा, गठिया, माइग्रेन, फैलेरिया (फील-फाम), गुर्दे की पथरी इत्यादि के लिए।

पाठ्यक्रम– 1. C.N.Y.T. (सर्टीफिकेट इन नैचुरोपैथी एण्ड योगा ट्रेनिंग)
योग्यता – 10वीं पास, अवधि – 1½ वर्ष

2. D.N.Y.S. (डिप्लोमा इन नैचुरोपैथी एण्ड योगा साइन्स)
योग्यता – इण्टरमीडिएट, C.N.Y.T., अवधि – 3 वर्ष

3. C.Y.T. (सर्टीफिकेट इन योगा ट्रेनिंग)
योग्यता – 10वीं पास, अवधि – 3 माह

1. संस्थापक– स्व० डॉ० गिरजा प्रसाद
2. प्रबंधक/प्रिंसीपल – डॉ० (श्रीमती) ऊषा रानी
बी०ए०एम०एस०, डी०एसी०, एम०डी०(एक्यू)
3. डॉ० महेश प्रसाद (योगा टीचर)
डी०एन०वाई०एस०
4. चिकित्सक – डॉ० आनन्द कुमार
एम०बी०बी०एस०, डी०एन०बी० (आर्थो)
5. डॉ० पारूल भदौरिया
एम०बी०बी०एस०, डी०ओ०, डी०एन०बी० (आफ्थो)
6. डॉ० श्यामसुन्दर विश्वकर्मा
बी०ए०एम०एस०, डी०एसी० (मैनेजिंग डाईरेक्टर)

आदर्श योग प्राकृतिक चिकित्सा शिक्षा संस्थान

द्वारा संचालित पाठ्यक्रम में प्रवेश लेकर अपने भविष्य को संवारें

1. D.N.Y.S. (डिप्लोमा इन नेचरौपैथी एण्ड योगिक साइंस)
योग्यता – 12वीं उत्तीर्ण, अवधि–3½ वर्ष
मान्यता:–अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद्, नई दिल्ली
2. C.C.H. (सर्टिफिकेट इन कम्यूनिटी हेल्थ)
योग्यता – 10वीं उत्तीण, अवधि–1 वर्ष प्रवेश–जनू एवं दिसम्बर
3. C. Yog (सर्टिफिकेट न योग)
योग्यता – 10वीं पास या फेल, अवधि–6 माह प्रवेश–जून एवं दिसम्बर

उपरोक्त कोर्स N.I.O.S. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयीन शिक्षा संस्थान, नोएडा, उ०प्र० से मान्य है।

प्रवेश प्रारम्भ हैं–विलम्ब शुल्क से बचने के लिए शीध्र प्रवेश लेवें।

सम्पर्क : **डॉ० श्रीमती ए० के० भारती**

HB-3, तक्षशिला परिसर, राजेन्द्र नगर मेन ए.बी. रोड़, इंदौर (म०प्र०) पिन-452012

मो०: 09302111742, 942514925

Gonorrhea - 3

■ Dr. (Mrs.) Devaki

Complications: Medical writers list a number of complications of gonorrhea such as gleets, stricture of the urethra, prostatetis, sterility, heart disease (pericarditis), gonorrheal rheumatism, blood-poisoning, peritonitis, various abscesses. Many of the indoor female patients are said to be having complicated forms of gonorrhea related diseases. Many cases of blindness of infants are also attributed to gonorrhea. Gonorrheal septicemia and pyemia are very serious conditions, where absorption takes place, which may at times result in death. Thousands of women are operated on every year for "female diseases" resulting from gonorrhea or wrong treatment of gonorrhea. In medically treated cases of gonorrhea, Pus tubes, chronic inflammation of the womb, pelvic abscesses, etc., are also common complications. Abscesses in the male often form and burrow in such a way as to make their way into the bladder, the pus showing up in the urine. Gonorrheal infection of the testes is often followed by gonorrheal rheumatism, a very intractable condition.

Many patients of gonorrhea come to Nature Cure after taking many treatments and developing many complications as above. However, those who take I\IC treatment at the initial stages or from the very beginning of Gonorrhea, do not develop such complications. Since these complications are never tfiet with in cases cared for hygienically, and since all the complications seen were in medically treated cases, one can be surely convinced that they are the results of medical treatment.

Dr. John H. Tilden says: "I have had cases consult me with fistulous openings back of the glans through which the urine found exit instead of passing out through the mouth of the urethra, caused by ulceration forced by obstructive dressings. Plugging up the meatus with pledgets of cotton held in place by the foreskin, or by rubber or cotton cots freguently causes ulceration and sloughing at the mouth of the urethra, after which there will be more or less obstructive, organized stricture formed; or if a bandage is kept in place by a cord wrapped around the penis oedematous swelling will take place, which of itself becomes obstructive, forcing the discharge back into the deep urethra, infecting the urethra's full length, and causing inflammation of the prostate and even of the bladder."

Etiology:. All the so-called "specific infections" are septic ortoxic infections. Sepsis is the infecting agent. Absorption of septic matter through an abrasion in the mucosa of the urethra or vagina occurs. "Gonorrheal infection" is assumed to come only from a case of gonorrhea, but this is a disputed topic, as Gonorrhea is often seen in children and sometimes no possible source of infection can be found.

Care of the Patient: Recovery from gonorrhea occurs in four to six weeks. It may rarely run longer than seven weeks. Women tend to recover earlierthan men.

The case of gonorrhea is susceptible to grow worse when indiscretions are indulged in, but that is a case which so quickly responds to hygienic care. Every symptom of gonorrhea may be made better or worse at will by changing the diet or other factors. If it is observed that a patient is not progressing we may be absolutely sure that he is not carrying out instructions.

Perfect cleanliness with a sensible dressing to permit drainage is essential. The affected parts should be washed several times daily. Frequent urination will keep the urethra cleansed. Dressings of the penis, to catch the discharge, should be loose and should hang from the hips. No obstruction to drainage should be permitted.

In acute stage of gonorrhea, fasting on water should be employed immediately. If a fast cannot be taken a diet of fruit or fruit juices may be employed. Tilden says: "Unless those who are decidedly auto-toxemic are fasted or placed upon a very light diet and taught how to be scrupulously cleanly, the urethral inflammation will become so intense that sloughing will take place, allowing the deeper tissues to become involved; which means that septic infection of the blood is starting up." The fast should last through the whole of the acute stage, preferably until there is no longeratrace of the discharge.

Dr. RT Trail advised that "the dietary should be exceedingly simple and very abstemious. Flesh food of all kinds, milk and all of its products, with seasonings and condiments of all sorts, should be prohibited. During the stage of acute inflammation, but little food of any kind should be taken." Let us add to this list eggs, bread, cereals, all concentrated starches & proteins, sugars, coffee, tea, cocoa, chocolate, alcoholic drinks, soda fountain slops, tobacco and all medicines. Injections of drugs are to be avoided. Douchesfor women are not advisable.

Hard work, walking, horseback riding, sports, etc., have a tendency to increase the suffering and prolong the trouble. Rest hastens recovery and lessens suffering. Sexual rest is also necessary - even thoughts of sex that tend to arouse desire should be avoided. ■

Basic NC Principles

The Living Matter Cures Itself-4

■ **Dr. P.V. Pushparajan**
Natural Hygienist

4. The Power Of The Living Organism To Reject And Eliminate All Waste, Useless And Injurious Substances:- The first three powers which we have just considered all depend upon the power peculiar to living things to appropriate dissimilar material from their environment, transform it into matter like themselves, and incorporate it into their own structure. The power to reject and refuse waste, useless & injurious substances and to eliminate these is as fundamental as the power of appropriation and transformation or assimilation. Each of these two powers is equally essential to the continuance of the living state and the living organism equally serves its own end in either set of actions.

The complex animal body is adequately equipped with organs and structures, the function of which is to excrete and eliminate from it all waste matter, toxins, etc. Important among these are the lungs, skin, kidneys, bowels, liver and the mucous surfaces of the hollow organs of the body. No special notice will be given to these organs at this place. For example, the nose and throat filter the air we breathe and remove dust from the air passages, etc. that get into these. The nose and trachea filter the air we breathe, warm it and moisten it and thus fit it for entrance into the lungs. All orifices of the body are normally self-cleaning. Their secretions are normally antiseptic and so long as their health remains unimpaired, unless overwhelmed from without, they remain clean and clear. A Diarrhea soon cleanses the

digestive tract when it becomes foul. "The organism of the human body is a self-regulating apparatus. Every interruption of its normal functions excites a reaction against the disturbing cause. If a grain of caustic potash irritates the nerves of the palate, the salivary glands try to remove it by an increased secretion. The eye would wash it off by an immediate flow of tears. A larger quantity of the same substance could be swallowed only under the protest of the fauces, and the digestive organs would soon find means to eject it. The bronchial tubes promptly react against the obstruction of foreign substances. The sting of an insect causes an involuntary twitching of the epidermis. If a thorn or splinter fastens itself under the skin, suppuration prepares the way for its removal. If the stomach be overloaded with food it revolts against further ingestion". The normal undisturbed excretion of waste matter is absolutely essential to life and health and the normal organism is capable of carrying on this process of excretion in an adequate manner so long as the normal conditions of life are present. When these conditions are only imperfectly or partially vouchsafed to the body for a length of time it gradually loses the normal energy of all its functions. The work of excretion is impeded resulting in an accumulation of toxic matter which is destructive to life and health. Matter is constantly being formed in the body, or received into it from without, that is both useless and injurious and, if allowed to remain and clog the activities of life, would produce disease or death. If the urine is suppressed for 52 hours, death results, if the skin of a man be varnished so that elimination through it is inhibited, death comes within a few hours. The carbon dioxide exhaled in a day would kill many times over if retained. If a wound is obstructed so that drainage is stopped, septicemia and probably death soon result. There is not a moment of life, from birth to death, that the body's processes of purification are not busily engaged in eliminating all wastes and toxins from the system.

The organism, being unable to get rid of these toxins in a normal manner is forced to resort to some abnormal means to accomplish its purification. These abnormal efforts of organic house cleaning or reactions against the toxins are termed disease. The examples eruptive fevers should convince any reasoning mind of the truth of this assertion. The fact that inflammation is resorted to not only in healing a broken bone or flesh wound, but also in resisting and removing toxins and foreign bodies, shots, slivers, parasites, etc., together with the most obvious fact that vomiting, diarrhea, colds, all forms of catarrh, night sweats, etc. are all forms of elimination demonstrate still more convincingly, the truth that disease is a curative process. It is the cure!

If a poison, such as spice, or Epsom salts, be taken into the stomach it is followed immediately by vomiting, or diarrhea. These actions are, obviously intended to expel the poison. If a gnat is drawn into the nostrils sneezing immediately follows. If a piece of bread or other food is drawn into the trachea (wind pipe) coughing follows. The same is true if mucous is excreted here in quantities. Both sneezing & coughing are intended to expel the offending matter. Dr. Jennings said that disease is 'right action' and we can all agree that sneezing or coughing or vomiting or diarrhea are all 'right actions' under the conditions named. Inflammation, the eruptions in scarlet fever, measles, etc. also are "right actions" in those conditions under which they develop. ■

Food for Health

■ **Gruel (Dalia) Jayant Parmar**

1. **Amla (Indian Gooseberry) Gruel:-** Items required: Rice, Amla, Ginger, Green Chilly & Salt. Method of preparation: Cut the Amla & Green Chilly into very small pieces. Crush the Ginger & extract its juice. Cook the rice. Add Amla & Green Chilly pieces and cook again properly. Add Ginger juice & salt and serve.
2. **Jeera Gruel:-** Items required: Rice, cumin (jeera), coconut, Turmeric(pieces), onion, & Salt. Method of preparation: Cook the rice properly. Mix/grind jeera, coconut, Turmeric (pieces) & onion. Add this with little water according to dilution required. Add salt to taste and serve.
3. **Fenugreek (Methi) Gruel:-** Items required: Rice, Fenugreek seeds, Coconut and Salt. Method of preparation: Sock the fenugreek seeds for 4 to 8 hours. Cook it with rice properly. Scrape the coconut and add it to this. (One may use coconut milk instead of Scraped coconut). Add salt to taste.
4. **Yam Gruel:-** Items required: Yam, Spinach (or other leafy vegetable) Coconut & Salt. Method of preparation: Cut Yam into small pieces. Boil water and cook yam & spinach together. Off the fire and add scraped coconut and salt. ¢

रोग एवं दवाओं से छुटकारा पाने के लिए प्राकृतिक उपचार एवं योग केन्द्र

नजर कंवर सुराणा मेमोरियल होस्पिटल

219, 220, गुलाबी बाग, दिल्ली-110007

भारत की राजधानी दिल्ली के बीचों बीच स्थित यह केन्द्र सितम्बर 2008 से दिनों दिन प्रगति की ओर अग्रसर है। रोगों से मुक्त होने के लिए एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें। केन्द्र पर एक्यूप्रेशर सहित प्राकृतिक उपचार की सभी आधुनिकतम सुविधाएं अपलब्ध है। इस केन्द्र का संचालन डा० सुमेर चन्द गुप्ता, जो वर्ष 1969 से पट्टीकल्याणा आश्रम (पानीपत) में सेवायें दे रहे थे, अब 5 वर्षों से गुलाबी बाग, दिल्ली में ही नियमित अपनी सेवाएं दे रहे हैं। यहां प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का साढ़े तीन वर्षीय कोर्स भी कराया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रशिक्षितियों हेतू निःशुल्क नियमित 6 मास के प्रैक्टीकल करने की सुविध भी उपलब्ध है।

मुख्य परामर्शदाता
डा0 सुमेर चन्द गुप्ता
दूरभाषः होस्पिटल 011-23655493
निवासः 011-45535843 मोः 09871755959

महिला चिकित्सक विशेषज्ञ
डॉ. शालू गुप्ता
(M.S. Yog, P.G. Deploma Chandigarh, N.D.D.Y., N.D.N.Y.

सहयोगी प्रतिष्ठान
डॉ. स्नेहलता गुप्ता सेवा संस्थान
ए-33, ओडिनेस अपार्टमेंन्ट
एच-ब्लाक, विकासपुरी, दिल्ली

Basic NC Principles

Vital & Non-vital Processes -1

■ Dr. P.V. Pushparajan Natural Hygienist

Vital forces and vital activities occurring in this universe are different from extra-vital, non-vital and anti-vital, mechanical, chemical, thermal and electrical forces and their effects. We are required to learn to separate & clearly distinguish between them. Physical, chemical, thermal, electrical and vital (parasitic) agents are capable of damaging the body. Their effects may be grouped as chemical and mechanical. Doctors and laymen alike commonly confuse the effects of injurious agents and the efforts of the living organism. The efforts of living organism are always to meet, overcome and destroy the injurious agents and to repair damages. Let us try to separate these two groups of phenomena. When the body of a living man is cut there is pain, bleeding, fibrin-formation, blood-clot, redness, swelling, healing and sloughing of the scab, but if the body of a dead man is cut none of these things follow. Strike the finger of a living man with a hammer and there is pain, hemorrhage into the tissues, blood-clot, inflammation, healing and removal of debris, but if we strike the finger of a dead man none of these things follow. The cut is the only effect of the knife; the bruise is the only effect of the hammer. Pain, bleeding, blood-clot, etc. as above are the reaction of the living body to physical or mechanical injury. If acid is poured on a dead body or live body, it would destroy the flesh it comes in contact with. This is example of the action (chemical) of harmful chemical substances upon the body. But their action causes further decay in the dead body, while in the living organism the harmful

chemical action of the acid is followed by pain, inflammation, and healing. Give a dose of salt to a dead man and nothing happens; give it to a vigorous man and a violent diarrhea occurs; give it to a feeble man and a feeble diarrhea occurs.

When a mustard plaster is applied on the body of a dead man, nothing happens, but if it is put on a live body, redness, smarting & blistering follow. A blistering plaster brings-forth instant inflammation in a healthy & vigorous skin, but the inflammation occurs with difficulty in a feeble skin and in the skin of the dead body no inflammation occurs at all. Blistering, like diarrhea, is a defensive reaction intended to protect the body from the damaging effects of friction, fire, or irritating drugs. Usually when the resistance is less, the effect/ impact of blister, etc. would be greater; but we can see that in the cases of feeble persons (where vitality & vital resistance is less), the blister, etc. is also less. The greater the vigor, integrity & resisting power of the living being the greater would be the effect of the blister. From this it is proved that it is the living system, and not the dead drug, which acts. Because of this, healthy vigorous persons, not feeble persons, when equally exposed to the causes of disease have more acute and violent maladies. We know disease is remedial action - extra ordinary excretion processes. Since healthy persons have vital machinery in vigorous condition, the defensive action, the disturbance, the disease will manifest proportionally more violent symptoms. From these examples we induce the law that "The actions of the living organism in the presence of a drug are the responses of its own powers to the drug and are proportioned to the degree of its vital vigor".

The vital powers offer a perpetual resistance to all pathogenic influences and agents. When this resistance is stronger than the pathogenic influence, "disease" does not occur. The body has at its command a wealth of means of meeting conditions and agents that threaten its integrity. In all cases Nature makes the proper efforts to remedy the condition. At successive periods of life the body responds to poisons in different ways, but always defensively.

Emesis, diarrhea and the abnormal perspiration are not the evil, but are functional efforts to free the body of some offending agent. Only a complex organism is capable of all the actions seen in "disease". Poisons are provocative of vital actions and reactions, but they do not produce the actions. Therefore such vital actions cannot be attributed to the poisonous agents. Whatever the exciting causes (occasions) of diseases, they all produce the same general effects upon the organs & tissues. The real difference in one disease and in another is the difference in the complexity of the mechanism which responds, and not in the manner in which the "stimulus" (poison) is received. Complex structures have complex "diseases". Man has a complex structure united to a complex physiology or way of life. Organs & parts are arranged in systems & series more or less complicated, with correspondingly intricate functional activities. Some structures or systems are more complex than others and in all so-called "diseases," one organ or system is most involved in the defensive struggle.

There goes on in "disease" certain interdependent processes and changes in the presence of aiding or hindering influences outside of it. Disease, considered in its various manifestations and in its oneness, appears as a process of stabilization and organic repair. It assumes as many different aspects as tissues and fluids encounter new situations. ■